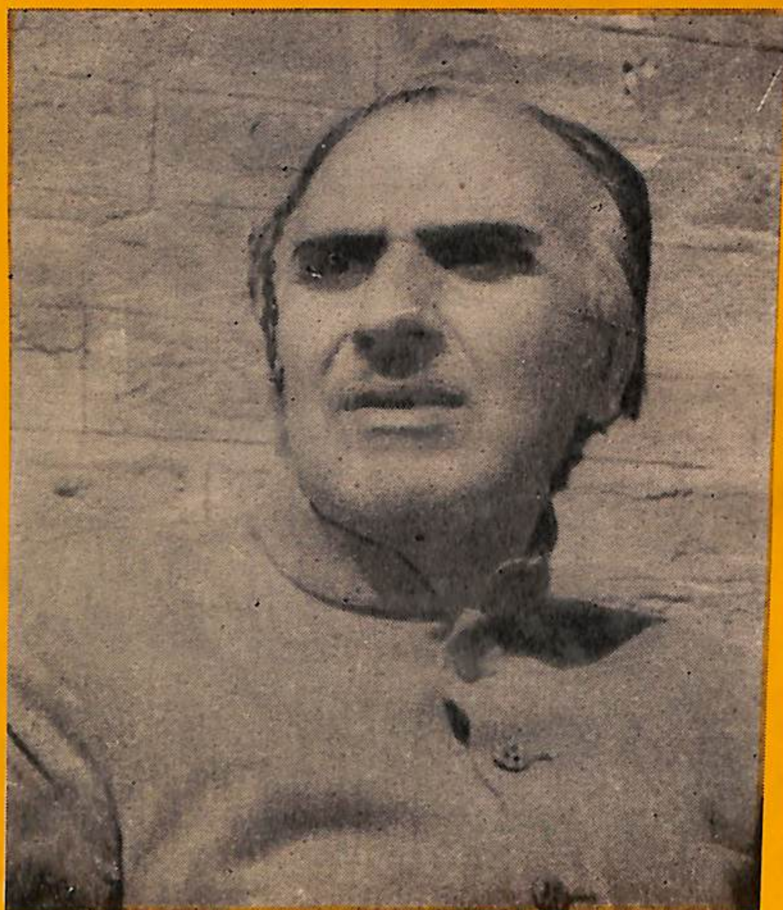
दीनानाथ नादिम

अभिनन्दन ग्रन्थ



जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
श्रीनगर, कश्मीर

भाई तेजबहादुर भान
जी
के
लिए

स्नेह और सद्भावना
के
साथ

चमनलाल

(चमनलाल सप्रू)
सम्पादक

दीनानाथ 'नादिम' अभिनन्दन ग्रंथ

दीनानाथ 'नादिम'

अभिनन्दन ग्रन्थ



सम्पादक

चमनलाल सप्रू

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
श्रीनगर (कश्मीर)

नीलजा-10

सम्पादक-मण्डल
प्रो० लक्ष्मीनारायण सप्रू
श्री मोतीलाल प्रमोद
प्रो० चमनलाल सप्रू

मुद्रक
एन० एस० प्रिंटर्स
111, पुराना मौजपुर, दिल्ली—110 053

आवरण
वेदप्रकाश कौशिक

मूल्य रु० 50.00

DINANATH NADIM ABHINANDAN GRANTH
Published by
J & K Rashtrabhasha Prachar Samiti Srinagar
Kashmir-190 001

Price : Rs. 50.00

अनुक्रमणिका



निवेदन

सम्मतियाँ/सन्देश

नादिम (कविता)

भेंट-वार्ताएँ

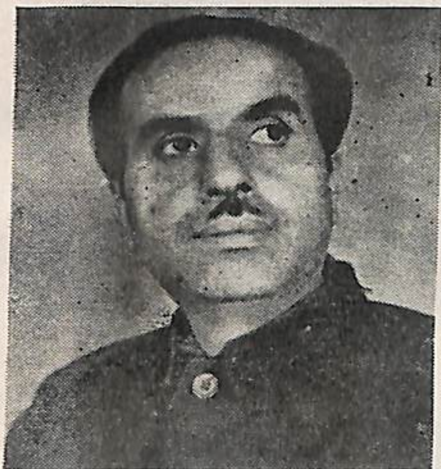
लेख/संस्मरण

अनुगूंज

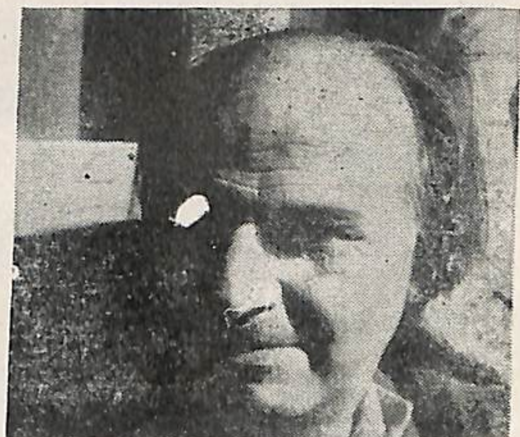
● हिन्दी कवि नादिम

● मुख्य घटनाएँ

दीनानाथ 'नादिम'



क्रान्तिकारी



चिन्तक



[illegible]

नादिम, दिनकर और नवीन



राजभाषा आयोग के सम्मान में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसर पर (1956)



दीनानाथ नादिम के साथ इंटर-व्यू लेते हुए चमनलाल सप्रू

जम्मू (तवी)
7. 1. 45

अति प्रिय चमनजी —

पचास वर्ष पुरानी बात है —
जब मैं उर्दू में शायरी करता था —
मैं एक दिन आपके घर की खिड़की
से गुनगुना रहा था। तभी एकाएक
कान में पड़ी।। काबूलो - काबूलो - [illegible]
[illegible] तु तस गावुलो
मन में अकारण ही गाने लगा। मेरा
पहला कश्मीरी गाना —
= चावनकि यारु बल - आरवलि प्रारलना
शामु पतकुन जामु, मु चरिथ चानी बा पथ
चाव सान -
[illegible] अन्दर तल - आरवलि प्रारवना
= [illegible] बुलबुल [illegible] -राग
गामय पथ [illegible]
[illegible] लोवत [illegible] - आरवलि प्रारवना
सप्रेम
आपका अपना ही
दीना नाथ नादिम

कवि के देवनागरी हस्तलेख का नमूना

['अभिनन्दन-ग्रंथ' के सम्पादक के नाम नादिम जी का पत्र]

निवेदन

"एकाएक जब नादिम के विषय में सोचता हूं तो साथ ही मुझे देवदार के पेड़ याद आते हैं।......देवदार और नादिम—एक वृक्ष दूसरा कवि! कोई एकता नहीं। पर न जाने क्यों मैं व्यक्तित्व के चित्र के साथ ही उस वृक्ष की कल्पना किये बग़ैर नहीं रह पाता। जैसे एकाएक पहाड़ जाते वक्त किसी मोड़ के कोने पर देवदार का पहला वृक्ष अनायास ही दिख जाता है, वैसे ही नादिम भी अनायास ही दिख गए।" ...यह पँक्तियां हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री कमलेश्वर ने पहली बार दीनानाथ नादिम का साक्षात्कार करने के उपरान्त लिखीं।

नादिम साहिब सचमुच कश्मीरी साहित्य के देवदार हैं—महान, उन्नत एवं विशाल, सौरभ वितरित करने वाले, तप्तजनों को ठंडक पहुंचाने वाले। अपने छात्रजीवन में जब प्रयाग में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से भेंट हुई थी तो तत्क्षण नादिम साहिब की याद आई। सच मानिए नादिम साहिब कश्मीर के निराला ही तो हैं—युग प्रवर्त्तक। वास्तव में नादिम साहिब कश्मीर की उस काव्य-परम्परा के 'वारिस' और 'अलम-बरदार' हैं जिसे भूतकाल में उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, लल्लद्यद, नुंद ऋषि, ग़नी, परमानन्द और महमूदगामी आदि ने अपनी वाणी से संपुष्ट किया है।

नादिम का काव्य-वैभव इस बात में छिपा है कि उन्होंने कश्मीरी कविता को नये आयाम प्रदान किये। अपने काव्यामृत से नादिम साहिब ने कश्मीरी जन-समाज को नई सामाजिक चेतना प्रदान की। नादिम ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से नई पीढ़ी को न केवल प्रभावित किया अपितु प्रेरित भी किया।

नादिम साहिब की महानता का इससे बढ़कर प्रमाण क्या हो सकता है कि आधी शताब्दी तक कश्मीरी साहित्य का भंडार समृद्ध करने के बावजूद इनकी कृतियों का कोई प्रतिनिधि संकलन अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका। तभी तो उन्हें न साहित्य अकादमी पुरस्कार से और न ज्ञानपीठ पुरस्कार से ही विभूषित किया जा सका। मस्तमौला कवि की कृतियों के मुद्रित रूप में न होने के बावजूद यह हमारे साहित्य पर छाये हुए हैं।

जम्मू-कश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति के स्थापना काल से ही आप एक परामर्शदाता के रूप में इस संस्था के साथ जुड़े रहे। बहुत से लोगों को यह जानकर आश्चर्य होता है कि कश्मीरी के अतिरिक्त नादिम साहिब हिन्दी के भी सिद्धहस्त कवि हैं। महात्मा गांधी के देहान्त के उपरान्त उनकी रची कविता 'कलिंग से राजघाट' तक एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है—उन लोगों के लिए जो भविष्य में "भारतीय हिन्दी साहित्य" का इतिहास लिखेंगे।

डॉ० हरिवंश राय बच्चन ने इनकी दो प्रतिनिधि कविताओं का हिन्दी-पद्यानुवाद करके नादिम की प्रतिभा से हिंदी के पाठकों को परिचित कराया। 1956 में राजभाषा आयोग के सम्मान में आयोजित एक साँस्कृतिक कार्यक्रम में स्व० रामधारी सिंह 'दिनकर' और स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा से हिन्दी-जगत को परिचित कराने के लिए हिन्दी लेखकों से अनुरोध किया।

कश्मीरी भाषा की इस महान विभूति को सार्वजनिक रूप में सम्मानित कर उन्हें एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रस्तुत करने का संकल्प मेरे मन में बरसों से उत्पन्न हुआ था। मुझे प्रसन्नता है कि रा० भा० प्र० समिति की कार्य-कारिणी समिति ने सहर्ष मेरे संकल्प को साकार करने के लिए मुझे भरपूर सहयोग दिया और हम कवि के 70 वें जन्म-दिबस पर यह ग्रंथ प्रकाशित करने में सफल हो सके हैं। हमारा यह प्रयत्न रहा है कि हर प्रकार से यह एक बहुमूल्य संदर्भ-ग्रंथ बन सके। समय और साधन की सीमा के भीतर काम करते हुए हम अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हो सके हैं—इसका निर्णय सुधी पाठक ही करेंगे।

अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ के कार्यालय सचिव श्री जगदीश प्रसाद शर्मा के प्रति आभार व्यक्त करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उन्होंने ग्रंथ के प्रकाशन-मुद्रण में बड़ा परिश्रम किया।

श्रीनगर (कश्मीर)
फाल्गुन शुक्ल दशमी, सप्तर्षि सं० 5060
(नादिम जन्म-दिन)
2 मार्च 1985

चमन लाल सप्रू
सम्पादक

छपते-छपते

डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' की मंगल कामना

उपाध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ
10 अप्रैल 1985

प्रिय सप्रू जी,

कश्मीर के प्रख्यात कवि श्री दीनानाथ नादिम के 70वें जन्म-दिन पर अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने के सम्बन्ध में आपका दिनांक 8 फरवरी 1985 का पत्र प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई। नादिम साहिब राष्ट्र के संघर्षशील युग के अग्रणी साहित्यकारों में रहे हैं। प्रगतिशील कवि के रूप में उनकी रचनाओं ने जन-जीवन में नव-जागरण का शंख फूंका था और कश्मीर के नैसर्गिक जीवन की वैविध्य पूर्ण छवि उनके साहित्य में एक प्रकार की ताज़गी पैदा करती रही है। उनकी रचनाओं का इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है कि उन्होंने विश्व के सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी लेखनी को नया वर्चस्व प्रदान किया। जब वे भारतीय सद्‌भावना मंडल के साथ चीन की यात्रा पर गए थे, तभी से हम लोग उनके कृतित्व के प्रति विशेष आकर्षित रहे हैं। डॉ० कोटनीस जैसे मानव-कल्याण एवं शान्ति के लिए निछावर होने वाले शहीदों की पावन परम्परा श्री नादिम की लेखनी से साकार होती रही है। वे प्राचीन और नवीन के सेतु कहे जा सकते हैं। राष्ट्रपति जी के हाथों उन्हें कल्हण-एवार्ड प्रदान करने का अनुष्ठान कश्मीर की उस महान परम्परा का सम्मान है, जिसमें राजतरंगिणी को आज भी जन-मानस में तरंगित कर रखा है। ऐसे महान कलाकार के प्रति मैं अपनी हार्दिक सद्‌भावना एवं मंगल कामना प्रेषित करता हूँ।

सस्नेह—
आपका
शिव मंगल सिंह 'सुमन'

काव्यमय कश्मीर के कवि

नादिम साहिब बड़े ही प्रतिभाशाली कवि हैं। श्रीनगर में उनकी एक कविता मुझे उन्हीं के मुख से सुनने को मिली। मूल की भाषा तो मैं कुछ न समझ सका, किन्तु नादिम साहिब ने उसका जो अर्थ बताया उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। ···इसमें अभी कृत्रिमता का प्रवेश नहीं हुआ है। कश्मीरियों का जीवन भी अभी काव्यमय है। इसीलिए, कश्मीरी भाषा में आज भी हृदय हिलाने वाली कविताएं की जा सकती हैं।

स्व० रामधारी सिंह दिनकर
["योजना" दिसम्बर 1956]

गंगाशरण सिंह
अध्यक्ष
अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ,
नई दिल्ली

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सुकवि दीननाथ नादिम के सम्मान में उनके सत्तरवें जन्म दिन के अवसर पर उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की योजना है। राजनीतिज्ञों और धनवानों के अभिनन्दन की इस समय बाढ़ सी आई हुई है। ऐसी परिस्थिति में सरस्वती के एक वरदपुत्र के अभिनन्दन की योजना प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

मैं इस अवसर पर उनका अभिनन्दन करता हूँ और कश्मीरी के माध्यम से उन्होंने भारतीय भाषा भण्डार को समृद्ध किया है उसके लिए उन्हें नमस्कार करता हूं। युग प्रवर्त्तक श्री दीनानाथ जी ने सॉनेट, कहानी तथा संगीत नाटक लिखकर कश्मीरी भाषा और साहित्य को नया मोड़ दिया। आने वाले रचनाकारों का मार्गदर्शन। साहित्य रचना के साथ-साथ वह समय के साथ कदम मिलाकर चलते ही नहीं रहे हैं बल्कि उन्होंने अगुआई भी की है। यह उनकी बड़ी विशेषता है। यह जानकर विशेष आनन्द और सन्तोष हुआ कि इस वर्ष मार्च में राष्ट्रपति उन्हें "कल्हण एवार्ड" से अलंकृत करने जा रहे हैं।

श्री दीनानाथ नादिम जी को मेरी हार्दिक शुभकामना। वह चिरायु होकर भाषा के भण्डार को उत्तरोत्तर समृद्ध करते रहें, यह मेरी कामना और प्रार्थना है।

मानसरोवर,
3-न्यायमार्ग,
चाणक्य पुरी नई दिल्ली-110021
14-2-1985.

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि पं० दीनानाथ नादिम के 70वें जन्म-दिवस पर उनको एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। नादिम साहब ने पिछली अर्द्धशताब्दी से ही कश्मीरी साहित्य में अनुपम योगदान दिया है। उनकी रचनाएं लोकप्रिय हैं और उन्होंने नयी राजनीतिक चेतना पर भी अपनी छाप छोड़ी है। मैं इस अवसर पर उन्हें हार्दिक शुभकामनाएं भेजता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूं कि भविष्य में भी वे साहित्य तथा समाज की सेवा करते रहें।

कर्ण सिंह

CHAIRMAN
Legislative council
JAMMU
D. O. No. CM/85/LC
Dated 8-2-1985

My dear Sapru Sahib,

I am glad to know that a felicitation volume to honour the great living Kashmiri poet Shri Dina Nath Nadim is being edited by you and published by J&K Rashtra Bhasha Prachar Samiti, Srinagar.

Shri Dina Nath Nadim needs no introduction. As a poet and crusador for peace at-home and peace-abroad he created a name for himself. Nadim has chosen new subjects for his poems. He has also used new forms and styles as the vehicle of his expression. He is mainly interested in MAN, his Joys and sorrows and his various pursuits in life. He is a friend of the down trodden and lowly placed. He has rendered great services in the cause of communal harmony. Naturally we come accross fresh air and exhilirating atmosphere when we go through his poems.

Nadim will live as long as Kashmiri poetry is read and enjoyed by the people not only in the state but also outside it. May he live long and continue his literary pursuits. It is a pity that though he is internationally known, his works have not been published so for. It is a matter for joy that the first anthology of his poem is soon to be published under the title "Shihilyakul."

I once again congratulate you on publishing the felicitation volume in honour of Nadim Sahib. This will afford a glimpse to the public in order to understand and appreciate the personality and genius of this great poet.

With regards,

Yours Sincerely
M.K. Tickoo

Prof. Chamanlal Sapru
Editor
Dinanath Nadim Abhinandan Granth.

मंत्री
टूरिज्म एण्ड ट्रेड एजेंसीज
जम्मू कश्मीर सरकार

श्री दीनानाथ नादिम हमारे 'राष्ट्र-कवि' हैं। संसार के किसी भी कोने में बसा हुआ ऐसा कोई कश्मीरी भाषी नहीं जो उनकी गहन गंभीर कश्मीरी कविता के झूमते-संगीत और सौंदर्य से परिचित न हो। कश्मीर की इस सुन्दर घाटी के लोगों के जीवन में, जो मात्र चार दशक पूर्व सैंकड़ों वर्षों की गुलामी से स्वातंत्र्य और प्रगति के आधुनिक युग में जागे, उनकी कविताओं ने नये प्राण फूंक दिये और साथ ही कीर्तिदायी स्फूर्ति एवं खुशियों का समावेश किया। श्री दीनानाथ नादिम ने नवजागरण के उसी युग में, कश्मीर के आज़ाद जनमानस में नये प्रगतिशील लोकाचार के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया।

फूलों की महक के समान नादिम का काव्य-सौरभ चारों ओर फैला और सौभाग्य से उनकी काव्य-प्रतिभा को समय पर यथा-योग्य सम्मान भी मिला। उनकी कृतियों का अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में हुआ है और उन्होंने भारत और विदेशों में दाद हासिल की है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिश्रमी-जनता के कामगारों के प्रति कवि के प्रेम और सम्मान को उजागर किए बिना, नादिम साहिब के प्रति अर्पित कोई भी श्रद्धांजलि पूरी नहीं हो सकती है। सौंदर्य-कला के चर्मोत्कर्ष को सार्वजनीन बनाने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किये। नादिम साहिब की कृतियां सदा-सर्वदा मानव समाज के सर्वोत्तम सौंदर्य के प्रति स्मरणीय प्रशस्ति बनी रहेंगी।

खेमलता वखलू

हरिवंशराय बच्चन
'सोपान'
बी-8, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-49,
17-2-1985

सम्मान्य बन्धु,

पत्र के लिए धन्यवाद ।

सद्भावना के लिए आभारी हूं ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप लोग श्री नादिम का अभिनन्दन कर रहे हैं ।

उनके 70वें जन्मदिवस पर उन्हें मेरा सादर अभिवादन ।

सर्वभाषा कवि सम्मेलनों में मैंने उनकी दो कविताएं कश्मीरी से हिन्दी में अनूदित की थीं—

1. हमारा वतन
2. ऐसा है संसार हमारा

आप उचित समझें तो मेरे अनुवादों का अभिनन्दन ग्रंथ के लिए उपयोग करें ।

शेष कृपा

सादर
बच्चन

प्रो० चमनलाल सप्रू
श्रीनगर

सी-358 विकासपुरी,
नई दिल्ली
15-12-1984

मानवतावादी कवि

कवि दीनानाथ नादिम ने कश्मीरी भाषा और भारतीय साहित्य की महान सेवा की है। वह ऊँचे दर्जे के मानवतावादी और सहृदय कवि हैं। मैंने उनकी कुछ कविताएँ सन् 1951 में उन्हीं के मुंह से सुनी थी। उनकी स्मृति मेरे मन में अब भी बनी हुई है। मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूं।

रामविलास शर्मा

36-ए, शेक्सपियर सरणि,
कलकत्ता
14-2-1985

दीनानाथ दीर्घायुश्च !

कविवर श्री दीनानाथ 'नादिम' कश्मीरी भाषा में वही स्थान रखते हैं जो रूसी में माइकोवास्की, बाँगला में काज़ी नज़रुल इस्लाम और सुकान्त भट्टाचार्य, तेलुग में श्री० श्री :, इस्पाहनी में पाब्लो नेरूदा, उर्दू में 'जोश' और 'फ़ैज', मलयालम में वल्लत्तोल और हिन्दी में 'निराला' और मुक्तिबोध रखते हैं। वे 'रोमाँटिक रिवोल्यूशनरी,' स्वछन्द विद्रोही कवि हैं, जिन्होंने कविता को जनोन्मुख बनाया।

आपको सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ और लेनिन के देश में आप सफर कर चुके हैं। आप सैफुद्दीन किचलू के साथ चीन की भी यात्रा कर आए हैं। राष्ट्रपति जी उन्हें इसी वर्ष प्रथम 'कल्हण एवार्ड' देने जा रहे हैं। कश्मीरी भाषा के इस युग प्रवर्तक कवि ने उस भाषा में प्रथम संगीत-नाटक, प्रथम सॉनेट, प्रथम कहानी लिखकर बहुत बड़ा मोड़ आधुनिकता की ओर दिया। महजूर और मास्टर जी के बाद उन्हीं का नाम कश्मीरी की आधुनिक कविता में लिया जाता है।

यह दैव दुर्विलास ही समझिए कि आधी सदी से कश्मीरी भाषा और साहित्य की मौन साधना करने वाले इस महान साधक की एक भी कृति अब तक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो सकी। अब इस वर्ष उनकी तीन सौ कविताएं "शिहिल्य कुल" (पेड़-छायादार) नाम से छप रही हैं; जो संग्रह हमें विश्वास है कश्मीर और भारत ही नहीं, विश्व में विख्यात होगा। इसकी चुनी हुई रचनाओं का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद शीघ्र उपलब्ध करना चाहिए।

साहित्य अकादमी के काम से मैं सन् '56 से कश्मीर जाता रहा हूं। '78 में मैं श्रीनगर युनिवर्सिटी में 'विज़िटिंग प्रोफ़ेसर' भी था। मैं कई बार उनसे मिला हूं। बड़े ही विनम्र, मिलनसार, मानवतावादी, संवेदनशील सद्गृहस्थ हैं। उन्हें जीवन में बहुत संघर्ष करना पड़ा, अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के लिए। उन्हें गुजराती में जैसे कहते हैं "आत्म-भोग" (स्वार्थ-त्याग) करना पड़ा। अब इस पक्की उम्र में उनकी छाया पाने वाले उस चिनार का वंदन करें।

दीनानाथ इस दीनानाथ को दीर्घायु करे जिससे उनकी वाणी दीन और अनाथों को 'संजीवनी' प्रदान कर सके !

प्रभाकर माचवे

कुलनायक,
गुजरात विद्यापीठ,
अहमदाबाद

प्रिय चमनलाल जी,

...यह जानकर खुशी हुई कि आप लोग कश्मीर के सुविख्यात कवि श्री दीनानाथ नादिम को उनके 70वें जन्मदिन पर एक अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने जा रहे हैं। आपने ग्रंथ का जो स्वरूप सोचा है वह कविवर के व्यक्तित्व के बिलकुल अनुरूप है। इस तरह से नादिम साहिब के पूरे व्यक्तित्व को आप देश के सामने रख सकेंगे।

कवि महोदय के बारे में स्थानीय लेखकों के साथ-साथ देश के अनेक विद्वानों एवं लेखकों की रचनायें भी इस में संग्रहीत होंगी, इससे अभिनन्दन ग्रंथ हिन्दी-साहित्य की एक अमूल्य निधि बन जाएगा।

नादिम साहिब ने कश्मीरी भाषा और साहित्य को जो योगदान दिया है उसमें कश्मीरी साहित्य को नया मोड़ मिला है।

आपके प्रयत्न से कश्मीरी भाषा और कविश्री दोनों का सम्मान हो पाएगा।

इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई स्वीकार करें।

रामलाल परीख

अजय निवास, जी-10, दिलशाद कालोनी,
शाहदरा, दिल्ली-32

श्री दीनानाथ नादिम कश्मीरी भाषा के शीर्षस्थ कवि और साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने कर्ममय जीवन की अपनी जन्मभूमि से अनन्त वैभव के चित्रणमें जानने के साथ-साथ उसके गौरव की अभिवृद्धि की है। एक उत्कृष्ट कवि और साहित्यकार के रूप में तो वे कश्मीर के जन-जन में लोकप्रिय हैं ही, एक जननेता के रूप में भी उनकी छवि अत्यन्त प्रशस्त और जाज्वल्यमान है।

वे जहां कश्मीरी भाषा के सम्पादकों में अग्रगण्य हैं वहाँ उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी तथा हिन्दी में भी अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। उनकी कविताओं में जहां कश्मीर के प्राकृतिक वैभव की झलक देखने को मिलती है वहां राष्ट्रीय जागरण की रचनाएं भी उन्होंने प्रचुरता से की हैं। उनकी ऐसी रचनाओंमें कलिंग से राजघाट तक, और 'अशोक से गांधी तक, अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

श्री नादिम के अभिनन्दन के अवसर पर मैं भी अपनी विनम्र पुष्पांजलि उनके श्री चरणों में अर्पित करता हुआ उनके दीर्घायुश्च की कामना करता हूं।

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

SECRETARY
J&K ACADEMY OF ART,
CULTURE & LANGUAGES

Dina Nath Nadim is a very tall Kashmiri poet, both literally and figuratively. His stature in the cultural field in twentieth century Kashmir somehow reminds me of the stature of Sheikh Mohammad Abdullah in the politics of twentieth century Kashmir. Both cast their long shadows over this eventful century and even beyond that. Just as Sheikh Mohammad Abdullah emancipated Kashmir from the bounds of feudalism and autocracy. Nadim liberated Kashmiri Language from the shackles of a decantent tradition. He belongs to the class and calibre of titans like the great Lalla, Mehmood Gami and Mehjoor. He revolutionised the course of Kashmir poetry with sheer force of his literary substance and style. He established modern generes like free verse, blank. Verse and sonnet in our language. Till date he is the only opera writer of consequence in Kashmiri and can be compared with the tallest Indian exponents of this genre very favourably. His torrent-like flow of refreshing Kashmiri vocabulary is a phenomenon unknown to Kashmiri before his emergence. He with his imagination and genius discovered the tremondous potentalities of Kashmiri language as a vehicle of artistic excellence which had remained latent. Though he began as a progressive of sorts, he finally settled at the creative and macabre detachment which is always the hall mark of genu ne artists. The vitality, originality spontaneity and majesty of his diction have been influence of great magnitude in Kashmiri verse.

His mastery over the idioms of Ghazal and Kashmiri prose is also very striking. In fact he was the first to write a modern short story in Kashmiri, which still has an authentic ring about it. What is more, he is a great Kashmiri as well and like the great Sheikh Abdullah, a standard bearer of Kashmir's distint identity—cultural as well as political.

Kashmiri culture will not see the like of him for many many years to come.

Mohammad Yousuf Taing



अध्यक्ष

जम्मू-कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

दिनांक 22-2-1985,

कविवर दीनानाथ नादिम कश्मीर की एक महानतम विभूति हैं। कश्मीरी साहित्य के आधुनिक काल में नादिम जी का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने प्रारम्भ में उर्दू में लिखना शुरू किया। उर्दू हमारे राज्य की सरकारी ज़बान है। स्वातंत्र्य संग्राम के सेनानी के रूप में कवि नादिम ने गाँव-गाँव में घूमकर अनुभव किया कि साधारण जनता उर्दू कविताओं के द्वारा मेरे क्रांतिकारी विचारों को नहीं समझ सकती। उन्होंने अपनी मातृभाषा का सहारा लिया। यह निर्णय न केवल नादिम महोदय के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने अपनी अद्भुत काव्य-कला से कश्मीरी कविता की काया पलट दी।

यह खेद की बात है कि पिछले पांच दशकों से कश्मीरी भाषा में काव्य-रचना करने वाले इस महाकवि की रचनाओं का एक भी काव्य-संकलन अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। अब सुना है कि कलचरल अकादमी के सहयोग से उनका प्रथम काव्य संग्रह 'शिहिल-कुल' (शीतल-वृक्ष) शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इससे निस्सन्देह नादिम साहिब के प्रेमियों एवं मद्दाहों की इच्छा पूरी होगी। साथ ही साथ कश्मीरी साहित्य भंडार में एक बहुत बड़ी कमी दूर होगी।

नादिम साहिब दो-तीन वर्षों से अस्वस्थ हैं। वह राष्ट्र-भाषा-प्रचार समिति, श्रीनगर की सलाहकार समिति के सदस्य भी रह चुके हैं। हम उनकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में उनका सम्मान करते हुए एक "अभिनन्दन ग्रंथ" समर्पित करके न केवल अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं अपितु हिन्दी जगत को कश्मीर की महानतम विभूति के महान व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व से परिचित कराते हैं।

मुझे आशा है हिन्दी-जगत हमारे प्रयास का सहर्ष स्वागत करेगा।

लक्ष्मी नारायण सप्रू

"नादिम"

□ श्री पृथ्वीनाथ मधुप

आज तक इस पंथ पर कितने चले
और कितने ही पदों के चिह्न इस पर रह गए
एक आया पांथ यह
हर क़दम जिसका सदा
खींचता निज ओर सबको
है शुरू से आ रहा
दे गया है ताज़गी औ' यह निराली शुद्धता
रास्ते को देख लो पहचान निज भी दे गया
इस क़दावर ने कि पथ को
मोड़ नूतन है दिया
उन्नतों में उच्चतम जो
उस शिखर तक ले लिया
कोसती है आज अपने को कि कल्हण की कलम :
एक यह व्यक्तित्व ऊँचा अनलिखा ही रह गया !!

"हर एक को हंसता हुआ देखूं यही मेरी आरजू है।"

☐ भेंटकर्त्ता—श्री ज़फर अहमद

ज़० अहमद : नादिम साहिब, आप की जन्म तिथि क्या है ? आप श्रीनगर के किस इलाके में पैदा हुए ?

नादिम : मेरी जन्म तिथि 18 मार्च, 1916 है और मैं श्रीनगर के हब्बा-कदल इलाक़े में पैदा हुआ हूं।

ज़० अहमद : हब्बाकदल के ऐतिहासिक महत्व के विषय में कुछ बताइए।

नादिम : हब्बाकदल के विषय में अनेक मत हैं लेकिन प्रायः यह कहा जाता है कि हब्बा ख़ातून जो यहाँ की मशहूर मलका रही है मेरे जन्म स्थान के पास ही दरिया के पार एक मुहल्ले (जिसको बाल-यारबल कहते हैं) में रहती थीं। कुछ खंडहर और अवशेष भी वहां हैं जो प्राचीन ऐतिहासिक महत्त्व के हैं और उनके बारे में विचार है कि वे हब्बाख़ातून के हैं, और वह कदल (पुल) उसी समय बनाया गया था। यह भी कहते हैं कि कोई हबीबुल्लाह पठान गवर्नर थे जिनके समय में यह बनाया गया था।

ज़० अहमद : जिस ज़माने में आप ने होश सम्भाला उस जमाने के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर कुछ प्रकाश डालिए।

नादिम : उस समय के हालात बड़े दुःख भरे थे। हमारी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ी हुई थी। आम लोगों को जीवन की साधारण आवश्यक वस्तुएं भी उपलब्ध नहीं थीं अतः मैंने जब होश सम्भाला तो मुझे याद है एक प्रकार की अकाल की सी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यह 1920 की बात है। अनाज इतना दुर्लभ था कि बड़ी दिक्कतों से मिला करता था और वह भी बड़े दामों पर साधारण-

तया लोग भूखों मरते थे। राजनैतिक स्थिति यह थी कि शख्सी-राज (तानाशाही) ने लोगों के सभी अधिकार छीन लिये थे। मुझे याद है पहली बार जब इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठी, यह सम्भवतः 1925 की बात है जब लार्ड रीडिंग यहां वायसराय बनकर आये थे। साधारणतया जब कोई नया वायसराय भारत आता था तो उसे काश्मीर आने का शौक़ होता था। यहाँ की एक प्रसिद्ध मान्यता यह थी कि जब वायसराय आता था तो कुछ न कुछ हो जाता था, वबा आ जाती थी, बीमारी फूट पड़ती या अकाल पड़ता था। ऐसा इसलिए कि शायद हमारी मनोवैज्ञानिक स्थिति इससे सम्बद्ध है क्योंकि साधारणतया जब यह बड़े लोग बाहर से आया करते थे तो लोगों को यहां बेगार में जाना पड़ता था। जब वायसराय की सवारी जेहलम पर से गुज़री तो जनता ने ऊंची आवाज़ से एहतेजाजी नारा बुलन्द किया "ग़दर, ग़दरे-बेदाद ग़दरे-फरयाद।" उस ज़माने की आर्थिक स्थिति का अंदाज़ा आप इस एक बात से कर सकते हैं कि यदि हमें कहीं दावत पर जाना होता तो पूरे मुहल्ले में किसी एक व्यक्ति के पास कोट हुआ करता था जिसको लोग बारी-बारी इस्तेमाल करते थे और इसी तरह किसी एक औरत के पास उमदा वस्त्र हुआ करता था तो उसी को पहनकर औरतें किसी दावत या समारोह में जाया करती थीं।

ज० अहमद : क्या आप महसूस करते हैं कि अब कश्मीरी जीवन में मूल परिवर्तन आ गये हैं?

नादिम : हां, काफी परिवर्तन आ गये हैं, जितनी उम्र मैंने गुज़ारी है उसमें काफी ऊंच-नीच से भी गुज़रा हूं। जब देश में आजादी की लड़ाई शुरू हुई तो इसका काफी प्रभाव कश्मीर पर भी पड़ा। शुरू में सिर्फ महात्मा गाँधी के स्वतंत्रता आन्दोलन का ही प्रभाव न था बल्कि भगतसिंह के आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा और इस प्रकार जनता में एहतेजाज का जज़बा पैदा हुआ। इससे पहले तो जैसे हम लोगों के मुंह में जबान ही नहीं थी। हमें महसूस हुआ कि देश के इन्कलाब पसन्दों के स्वतंत्रता आंदोलन और राज्य स्तर पर शेख साहब के नेतृत्व ने हमें पहली बार जबान प्रदान की और यहाँ के जन-जीवन ने एक नयी करवट ली।

ज० अहमद : क्या जागृति की लहर देश के दूसरे भागों की तरह ज़ोरदार थी?

नादिम : लगभग! लेकिन जलियाँवाला बाग की खूनी घटनाओं की जो

घोर प्रतिक्रिया हुई वैसा उबाल यहां 1931 में आया। और इसके बाद स्वतंत्रता संग्राम में हम देश के लोगों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ रहे थे।

ज० अहमद : नादिम साहिब, आपने शे'र (कविता) कहना कब शुरू किया और इसके लिए प्रोत्साहन कहां से मिला ?

नादिम : मुझे शे'र कहने का प्रोत्साहन आंतरिक एवं बाहरी स्थितियों से मिला। मैं बड़ी कम उम्र में अनाथ हो गया था। उन दिनों मेरे सभी सम्बन्धी मुझसे मिलने से कतराते थे बल्कि वे मुझे घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका यह रवैया वस्तुतः उस समय की सामन्तवादी व्यवस्था की पैदावार था। इस रवैये ने मेरे दिल में एहतेजाज, विद्रोह करने के भाव को उभारा। आक्रोश, एहतेजाज, एवं विद्रोह जैसे मेरे इन भावों को अभिव्यक्ति की तलाश हुई। किन्तु उस समय लोग कश्मीरी की ओर कम ध्यान देते थे। उर्दू की बड़ी चर्चा थी। सम्भवतः इसका कारण था कि यह उर्दू के जो मुशायरे हुआ करते थे या जो ड्रामा कंपनियां आती थी वह उर्दू के ड्रामे लेकर आती थीं। यही नहीं बल्कि यहां भी जो ड्रामा कंपनियां बनीं उन्होंने भी उर्दू को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इस क्रम में आगा हशर, बेताब, मिर्ज़ा रूस्वा और अमानत के ड्रामे स्टेज किए गए। यहाँ की राज्य-भाषा उर्दू थी। अतः उस ज़माने में—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ु-ए क़ातिल में है।

जैसे इनक्लाबी अशआर (क्राँतिकारी छन्दों) की गूंज गली-गली सुनाई देने लगी। इसके साथ-ही हाली, नादिर काकोर वी, चकबस्त, इकबाल, हफीज-जालंधरी और रामप्रसाद-बिस्मिल की नज़्में जनता की ज़बान पर थीं। अतः यही एक रास्ता था कि इसी (उर्दू) भाषा में कविता की जाए।

ज० अहमद : प्रारम्भ में आप किन विषयों से अधिक प्रभावित रहे ?

नादिम : प्रारम्भ में मेरी शायरी पर देश भक्त का अधिक प्रभाव था, इसका कारण इक़बाल और चकबस्त थे। इसके बाद जोश, एहसान दानिश और अन्य शायरों का भी काफ़ी असर रहा। एहसान दानिश तो एक प्रकार से मेरे गुरु भी थे। मैं अपनी नज़्में, ग़ज़लें उनके पास इसलाह के लिए भेजा करता था।

ज० अहमद : जैसा कि आपने फ़र्माया शायरी आपने उर्दू में शुरू की लेकिन बाद में आपने कश्मीरी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, इस परिवर्तन का कारण ?

नादिम : इसके तीन प्रमुख कारण हैं। प्रथम वह कि मेरे नाना पंडित विष्णु भट्ट कश्मीरी में शे'र कहा करते थे, मेरी माँ भी जिनका नाम सुख सुन्दरी था और जो घर में सुख माली कहलाती थीं उन पर नाना का काफी प्रभाव था और उन्होंने भी कश्मीरी में अशआर (कविताएं) कहने की कोशिश की थी। दूसरा कारण यह था कि 1938 में जब यहां स्वतंत्रता आन्दोलन अपने चरम बिन्दु पर था नेशनल कान्फ्रेन्स की स्थापना हुई थी। इस आन्दोलन में मैं एक कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में शामिल था जिसके बदले मुझे काफ़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। जेल भी जाना पड़ा और जब आन्दोलन को कुचलने का काम प्रारम्भ हुआ तो पुलिस मेरी सारी नज्में ज़ब्त करके ले गई। यद्यपि वह सारी नज्मे उर्दू में थी मगर कश्मीरी में लिखने की प्रेरणा इस तरह मिली कि उन दिनों महजूर कश्मीरी की नज्म "वलो हा बागवानो नवबहारुक शान पैदा कर" गाई गई थी और स्वयं शेख साहब ने गाई थी। देश-प्रेम से पूर्व यह नज़्म लोगों के दिलों में घर कर गई थी। इस नज़्म की लोकप्रियता से मुझे यह अनुभव हुआ कि हमें भी अपनी ही भाषा में लिखना चाहिए। अतः कश्मीरी में मैंने पहली नज़्म 'मादरे कश्मीर' लिखी जो कश्मीर के विषय में थी। तीसरा कारण यह था कि आन्दोलन के सम्बन्ध में मुझे गांव जाना पड़ता था। जहाँ मैंने अनुभव किया कि लोग कश्मीरी की तुलना में उर्दू में कम रुचि रखते थे। कश्मीरी में लिखने का एक कारण यह भी था।

ज० अहमद : खूब।

नादिम : सम्भवतः 1946 से कश्मीरी में शायरी बड़ी तेजी से होने लगी। यहाँ एक संस्था बनाई गई जिसमें मिर्जा आरिफ, अब्दुल हक बर्क और प्रेमनाथ परदेसी शामिल थे। इन लोगों ने 1946 में ही, जब यहां मुशायरे की इजाजत नहीं थी, एक मुशायरे की व्यवस्था की। उसमें मैं भी सम्मिलित हुआ था।

ज० अहमद : तो आप सोचते हैं कि इस ऐतिहासिक मुशायरे ने आप की सोच में कोई परिवर्तन उत्पन्न किया ?

नादिम : जी हां, मैंने महसूस किया कि कश्मीरी शायरी के स्वर को बदलने की जरूरत है और शायद मैं ही वह आदमी हूं जो कश्मीरी शायरी को नया स्वर प्रदान कर सके।

ज़० अहमद : क्या आपके नज़दीक मातृभाषा ही कविता सृजन के लिए आवश्यक है? यदि हां तो इकबाल और ग़ालिब की शायरी के बारे में आपका क्या विचार है? जिनकी शायरी का अधिकतर भाग फ़ारसी में है। और उनके महत्त्व को भी स्वीकार किया जाता है।

नादिम : यह आवश्यक नहीं कि मातृभाषा में ही शायरी की जाए और वही अभिव्यक्ति का माध्यम भी बन सकती है। शायर किसी भी भाषा में शे'र कह सकता है शर्त उस भाषा में महारत हासिल करने की है। ग़ालिब और इक़बाल ऐसे ही बाकमाल शायर हैं।

ज़० अहमद : आप कश्मीरी में प्रगतिशील शायर माने जाते हैं। क्या यह सही है कि आप मानसिक या व्यावहारिक स्तर पर इस आन्दोलन से सम्बन्धित रहे हैं?

नादिम : जी हां मानसिक एवं व्यावहारिक स्तर पर इस आन्दोलन से सम्बन्धित रहा हूं बल्कि मेरी शायरी का उदय इसी आन्दोलन से सम्बन्धित है। इसने मेरी शायरी को सींचा है। और न केवल मेरी बल्कि रहमान राही, गुलाम नबी फ़िराक और यहाँ के अधिकतर शायरों की शायरी को भी प्रोत्साहित किया है। अली मुहम्मद लोन, सोमनाथ जुत्शी और हरिकृष्ण कौल आदि भी इस आन्दोलन से लाभान्वित हुए हैं।

ज़० अहमद : क्या आपने इस मत पर विचार किया है कि दृष्टि-बद्ध या प्रतिबद्ध शायरी शायरी को पाबन्द कर देती है? क्या आपको कभी इस पाबन्दी का अनुभव हुआ है?

नादिम : जरूरी नहीं है कि यदि कोई कलाकार अपनी कला में दक्षता रखता हो तो किसी भी दृष्टि या जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति कविता में कर सकता है। हां, यह सच है कि शायरी जब केवल नारा मात्र बन जाती है तो वह शायरी नहीं रह जाती, नारा मात्र ही रह जाती है।

ज़० अहमद : मेरे निकट आधुनिकता एक नया काव्यात्मक एवं वैचारिक रवैय्या है। आपका क्या विचार है?

नादिम : हाँ वैचारिक रवैया है और इसे होना भी चाहिए। इसकी जरूरत भी है। क्योंकि इकहरी शायरी तक हम सीमित नहीं रह सकते। शायरी उस समय तक अर्थहीन है जब तक वह Grass Root से उभरकर हमारी कल्पना के शिखर तक न जाए, यदि ऐसा न हुआ तो वह पाबन्द बन जाएगी और सिसक-सिसककर मर जाएगी। जरूरत है कि नये वैचारिक रवैय्या और दृष्टिकोण को साथ लेकर हम चलें किन्तु इसमें मानव जीवन के उद्देश्य को नजर-अन्दाज नहीं होना चाहिए। हम अपनी तनहाई की तलाश में तनहा न रह जाएं।

श० अहमद : अपनी रचना-प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डालिए। क्या आप पहले कोई विषय निश्चित कर लेते हैं ओर फिर उसे शब्दों में ढालते हैं या अचैतनिक रूप से सृजन की प्रक्रिया में व्यस्त होते हैं?

नादिम : प्रायः ऐसा हुआ है कि अचैतनिक रूप से किसी वस्तु से प्रभावित हुआ हूं। चाहे वह कोई घटना हो या दुर्घटना या कोई साधारण सी बात। जैसे घास का एक तिनका है यह मुरझा गया है। कोई गाड़ी आती है और उसके ऊपर से गुजर जाती है। यह छोटी-सी घटना भी मुझे प्रभावित कर सकती है। बाह्य जीवन का कोई प्रभाव मेरे मन-मानस में अहिस्ता-अहिस्ता पलता रहता है और फिर अचानक फूट पड़ता है। तब मुझे अभिव्यक्ति की तीव्र आवश्यकता होती है।

ज० अहमद : समसामाजिक कश्मीरी शायरी की सृजनात्मक सम्भावनाओं के विषय में कुछ फरमाइए।

नादिम : मेरे विचार में कश्मीरी शायरी में सृजनात्मक सम्भावनाएं अत्यन्त विस्तृत है। हमारे यहां शायरी भी अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति छोटी उम्र की है। नये फार्म और शायरी की जिन विधाओं को यहां आज़माया गया है उनकी उम्र भी बहुत कम है। इसलिए रचना प्रकिया जो अन्य भाषाओं में परिपक्व हो गई है और कई भाषाओं में तो चरम बिन्दु पर आ गई है, हमारे यहां अभी कमसिन है।

ज० अहमद : कश्मीरी भाषा की उन्नति के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

नादिम : एक सुझाव तो यह है कि इसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। इसके अतिरिक्त कश्मीरी भाषा में अधिक से अधिक मुद्रण-प्रकाशन

का काम होना चाहिए। एक बात लिपि के विषय में भी ? हमारी लिपि वही है जो उर्दू की है। केवल वर्तनी का अन्तर है। मेरे विचार में कश्मीरी लिपि में वर्तनी कम करके इसे और अधिक आसान बनाया जाए। स्वयं महजूर के जमाने में जब इन्होंने कश्मीरी में गीत लिखे इतनी वर्तनी नहीं थी। फिर भी इनके गीत लोग पढ़ा और गाया करते थे।

ज० अहमद : दूरदर्शन तथा रेडियो इस सम्बन्ध में क्या सहायता कर सकते हैं ?

नादिम : बहुत सहायता कर सकते हैं। रेडियो ने तो सबसे बड़ी सेवा की है कश्मीरी भाषा और साहित्य की। क्योंकि 20-25 वर्षों में जितने भी प्रोग्राम इस भाषा में होते रहे हैं उसने सचमुच इस भाषा एवं साहित्य को सींचने में बड़ी सहायता दी है। हमारी संस्थाएं भी इतना काम नहीं कर सकती थीं जितना रेडियो और दूरदर्शन ने किया है।

ज० अहमद : आप किन साहित्यिक और राजनैतिक व्यक्तियों से प्रभावित हुए हैं ?

नादिम : मैं सबसे पहले ग़ालिब से प्रभावित हुआ हूं। इक़बाल से भी प्रभावित हुआ हूं। फिर चकबस्त ने भी प्रभावित किया है। जब युवावस्था को पहुंचा तो जोश, एहसान दानिश और एक स्थानीय कवि 'मस्ताना', जो आमिल और दरवेश थे, उनसे प्रभावित हुआ हूं। इनके अतिरिक्त पं० नेहरू, बरट्रेन्ड रसेल, माइकावस्की चेखव और अंग्रेजी क्लासिक्स के नवरोमांसवादियों से प्रभावित हुआ हूं।

ज० अहमद : आपके कुछ समसामयिक शायरों का विचार है कि आप धीरे-2 माज़ी (अतीत) की आवाज़ बनते जा रहे हैं ? आपकी क्या राय है ?

नादिम : माज़ी की आवाज बनना बुरा नहीं है। हमारे यहाँ एक साँस्कृतिक संस्था बनी थी तो उस समय हमने उस संस्था के घोषणा-पत्र में कहा था कि हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों का नये सिरे से विश्लेषण करना है। आज भी मैं यह समझता हूं कि यह कोई बुरी बात नहीं है बल्कि अपने सांस्कृतिक मूल्यों को पुनः जीवित कर पाने के सम्बन्ध में एक सराहनीय कार्य होगा।

ज० अहमद : हूं। क्या आप अपनी शायरी से सन्तुष्ट हैं ?

नादिम : नहीं, मैं सन्तुष्ट नहीं हूं।

ज० अहमद : आप से एक आखिरी प्रश्न—आपकी सबसे बड़ी आरजू क्या है ?

नादिम : मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी आरजू यह है कि मैं हर एक को हंसता हुआ देखूं।

ज० अहमद : बहुत-बहुत शुक्रिया।

['शीराज़ा' से साभार]

□ □ □

"नादिम साहिब कश्मीरी भाषा व साहित्य के पोषक तथा दीपक हैं। उनकी शायरी अपनी शैली तथा माधुर्य-गुण के कारण एक संगेमील की हैसियत रखती है। आपने रियासत में सांस्कृतिक आन्दोलन की भी अपूर्व सेवा की है और अपने आत्मविश्वास तथा प्रौढ़ता के कारण कश्मीरी बुद्धिजीवियों की वर्तमान पीढ़ी को प्रभावित किया है। आपने विश्व साहित्य की विभिन्न विधाओं को कश्मीरी शायरी में अपनाकर नये परीक्षणों से इसे समलंकृत करके नया रूप दे दिया। नादिम साहिब कश्मीरी भाषा के उच्च एवं मार्मिक कवि माने जाते हैं उनके साहस पूर्ण परीक्षणों ने इस भाषा की साहित्यिक परम्परा को नई दिशा प्रदान की।"

सचिव,

जम्मू-कश्मीर अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़।
(दिनांक 29 मई 1974, नादिम साहिब के सम्मान-समारोह के अवसर पर)

"वितस्ता के समान शाश्वत जीवन में विश्वास"

□ भेंटकर्त्ता—प्रो० चमनलाल सप्रू

सप्रू : नादिम साहिब आपकी साहित्यिक यात्रा में पग-पग पर यह बात साफ ज़ाहिर होती है कि आप साम्यवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हैं। लेकिन, फिर भी आप अपने देश की महान परम्पराओं यहां के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के प्रति अगाध मोह रखते हैं ? इन दो भिन्न दृष्टिकोणों का समन्वय आपके चिन्तन में कैसे समाया है ?

नादिम : इस प्रश्न के संदर्भ में, चमनजी, मैं यह बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं बचपन से ही गहरी देशभक्ति और आपसी भाई-चारे की भावनाओं से प्रभावित एवं प्रेरित था। जब मैं बड़ा हुआ तो मैंने अपने चारों ओर एक टीस सी उत्पन्न करा देने वाले यथार्थ को देखा। और देखा ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-व्यवस्था को जिसमें अधिकांश—एक विशाल जन समुदाय को बिलकुल सर्वहारा और बहुत थोड़े आर्थिक रूप से सम्पन्न। इस भावना ने मुझे एक ऐसे समाज के विकास की तड़प पैदा कर दी जो समाजवादी विचारों पर आधारित हो और सौभाग्य से 1947 में इस ओर मेरा परिचय हो गया। शहीद भगतसिंह जैसे देशभक्त के सहयोगी कामरेड धन्वन्तरि ने मुझे मानवतावादी मार्क्सिज़्म के दायरे में शामिल किया। कामरेड धन्वन्तरि एक परिपूर्ण मानव था जिसकी समाजवाद में गहरी आस्था थी।

अब रही बात मेरी साँस्कृतिक पृष्ठभूमि की यह मुझे अपनी विधवा माँ से विरासत में मिली है। वह मुझे बचपन में सोते समय "लल्लद्यद' के "वाख" और 'नुन्दऋषि' के "श्रुख" सुनाया करती थी।

'परमानंद' और 'कृष्णदास' (कृष्णराज़दान) की कवितायें मेरा मुख्याधार थीं। इसके अतिरिक्त घर में असंख्य देवी-देवताओं के चित्र मेरी साँस्कृतिक परम्परा के आधार थे। इन सब बातों ने मुझे अपनी साँस्कृतिक-परम्परा में झाँकने का सुअवसर प्रदान किया।

सप्रू : आपके व्यक्तित्व को संपुष्ट करने में कौन-कौन प्रेरणा-स्रोत रहे हैं ? शैक्षणिक क्षेत्र में, राजनैतिक क्षेत्र में और फिर साहित्यिक क्षेत्र में ?

नादिम : कुछ हद तक मैं रुपर्ट ब्रुक, स्विन बर्न, जेम्स एलोरी फ्लेकर और वर्डसवर्थ से प्रभावित हुआ लेकिन चकबस्त के 'सुबह्-ए-वतन' को पढ़कर मैं आन्दोलित हुआ। इसने मेरे चिन्तन को 'मोल्ड' किया और मुझे प्रगतिवादी कवि बना दिया। भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और अशफाक अल्लाह तथा अन्य देशभक्तों के ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी अमर बलिदानों ने मुझे क्रांतिकारी क्रियाकलापों की प्रेरणा दी। यह वह समय था जब महात्मा गान्धी और पंडित जवाहरलाल नेहरू हमारे लिए आदर्श एवं प्रकाश-स्तम्भ बन गये थे। इन दो महान नेताओं ने मेरे स्वभाव एवं प्रकृति को अपने व्यक्तित्वों की चुम्बकीय शक्ति से अपनी ओर आकृष्ट किया। 1938 में मैं आल जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कॉंफ्रेंस के आन्दोलन में अपने आपको एक करने के लोभ का संवरण न कर सका। यह वह समय था जब जम्मू-कश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस को नेशनल-कांफ्रेंस में बदल दिया गया। मुझे सितंबर 1938 में कारावास मिला। मेरे कारावास का कारण था अपने सार्वजनिक भाषण के आरम्भ में स्वरचित तीन उर्दू नज़्मों का गायन। उन कविताओं की प्रथम पंक्तियां इस प्रकार थीं—

शहीद की जो मौत है
वह कौम की हयात है।।
उनके रंगीले खून ने
कश्मीर ज़िन्दा कर दिया।।"

उर्दू में कविता लिखने के लिए मुझे स्पष्ट रूप से जोश, इक़बाल और एहसानबिनदानिश ने प्रभावित किया था। एहसान दानिश ने कश्मीर आकर हमें शताब्दियों की जड़िमा—उदासीनता से जगा दिया।

सप्रू : मूलतः आप कवि हैं, लेकिन शिक्षक के रूप में भी आपका विशिष्ट स्थान है। आपके जीवन में वह कौन-सी घटना थी, जिसने आपको शिक्षक बनने में प्रेरित किया ?

नादिम : भई, अध्यापन के पेशे को अपनाने के लिए मैं आपसे कहूं कि मैं लेनिन, गैरीबाल्डी, मैज़िनी, मायाकोविस्की, गोर्की आदि के गहन अध्ययन द्वारा प्रभावित हुआ। इन महान चिन्तकों की कृतियों के अधिकतर अंश मैंने बड़े अध्यवसाय और लगन से कंठाग्र किये थे। जब मैं एक विद्यार्थी था मैं अपने और अपनी माता का गुज़ारा चलाने के लिए प्राईवेट ट्यूशन करता था। यही अनुभव अन्ततः चौथी दशाब्दी के आरम्भ में अध्यापक के पेशे की ओर खींच लाया। हिन्दू-हाई स्कूल की स्थापना के प्रथम वर्ष ही मैंने लल्लद्यद मेमोरियल हाई स्कूल और गाँधी मेमोरियल कॉलिज* तथा अन्य चार स्कूल आरम्भ किए। मुझे कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य के रूप में जम्मू-कश्मीर-लद्दाख टीचर्स फेडरेशन में प्रविष्ट कराया गया। मैंने इस संस्था को एक आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया। सारा जम्मू-कश्मीर राज्य इस आन्दोलन की गिरिफ्त में आ गया था। परिणामतः 1957 में सभी अध्यापकों ने मुझे अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करके विधान परिषद में भेज दिया। तत्कालीन शासकीय दल के घोर विरोध के बावजूद हम दो—जम्मू खण्ड से श्री गुलाम रसूल आज़ाद और कश्मीर घाटी से मैं विधान परिषद के लिए निर्वाचित हुए थे। यहीं महान घटनायें मुझे अध्यापक बनने के लिए प्रेरक सिद्ध हुईं और मुझे इस पर गर्व है।

सप्रू : 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो कश्मीर में भी एक स्वायत्त शासन की नींव पड़ी। आपका राजनीति में भी बड़ा उज्ज्वल भविष्य था, किन्तु आपने 'साँस्कृतिक-महाज़' पर ही देश के नव-निर्माण के लिए आन्दोलन चलाने का क्यों बीड़ा उठाया ?

नादिम : जब 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ, हम भी आज़ाद हुए। शीघ्र ही मुझे कुछ हुआ, मेरे भीतर का छिपा हुआ आक्रोश-संकुल एवं शक्ति गीतों के रूप में उमड़ पड़ी। कविता का सारा ताना-बाना बिल्कुल

---

*गान्धी मेमोरियल कॉलिज का आरम्भिक नाम भी हिन्दू कॉलिज ही था और महात्मा गान्धी के बलिदान के पश्चात् इसका नाम गांधी कॉलिज हो गया।—सं०

बदल गया था। चारों ओर नारों की धूम थी। मेरे लिए उनसे बचना मुश्किल था, किन्तु मैंने नारों को कश्मीरी शब्द योजना एवं रीति में इस प्रकार ढाल कर सम्पुष्ट कर दिया कि पांचवां दशक कश्मीरी भाषा के लिए नवचेतना और विकास का काल सिद्ध हुआ। मैं नये आन्दोलन का कीर्तिमान-वाहक बना और आज तक वह ध्वजा उठाये हुए हूँ।

सप्रू : आपको दो बार विदेश यात्रा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है—एक बार चीन गए थे एक सद्भावना मण्डल के साथ वर्ष 1952 में और फिर 'सोवियत लैंड' पुरस्कार-विजेता के रूप में सोवियत संघ की भी आपने यात्रा की सन् 1971 में। इन दो महान देशों की यात्रा सम्बन्धी कुछ रोचक घटनाएं सुनाइए ?

नादिम : इन यात्राओं के साथ कई घटनायें याद आती हैं मैं मात्र दो घटनायें सुनाऊँगा, जिनसे समाजवादी देशों के स्वभाव एवं प्रकृति की झलक प्राप्त होती है।

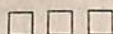
1. मेरे पास एक पतलून थी। लगातार इस्तेमाल से यह फटी हुई थी। उसे मैंने होटल के उस कमरे में फेंक दिया जहाँ मैं ठहरा था। लेकिन अच्छी प्रकार से रफू और प्रेस करके इसने टियन-शियन के मेरे कमरे के भीतर पहुँच कर मेरा पीछा किया। मैंने दुबारा इसे यहीं पर फेंक दिया। नानकिंग पहुँचने पर मैं तब हक्का-बक्का रह गया जबकि मरम्मत करके और भली-भाँति पैक करके मुझे मिला। कैंटन जाते हुए मैंने इसे ट्रेन में अपने बिस्तर के नीचे छिपाकर रख छोड़ा। कैंटन पहुँचने पर मैंने देखा— अरे! यह तो यहां भी मेरा पीछा कर रहा है। इस प्रकार मुझे इतना सताकर मैंने एक तरकीब सोची—मैंने इस पर एक लेबल चिपका दी और लिखा—"फटा हुआ है, कृपया इसे न लौटाइए"।

2. सोवियत लैंड के मिन्स्क शहर में मेरा दान्त-दुखने लगा। रात को मैंने अपने फूले हुए गाल पर सिकाई की। सुबह मेरा गाईड मुझसे सख्त नाराज हुआ और वह मुझे विवशतापूर्वक हस्पताल ले गया। वहाँ उन लोगों से मैंने अनुरोध किया कि मुझे कुछ antibiotics दिए जायें। कोई antibiotics नहीं हम आपका दान्त निकाल देंगे। और फिर बिना स्थानीय anaesthesia लगाये मेरे डाक्टर महोदयों ने 'फोर सेप' से मेरा दुःखता दान्त उखाड़ दिया।

यह होता है कामरेड के काम करने का ढंग। मैंने कुछ पीड़ा-निवारक औषधि के लिए अनुरोध किया। उन्होंने मुझे एक प्रकार की ब्रांडी की बोतल भेंट की और कहा—इससे पीड़ा निवारक औषधि का काम चलेगा।

सप्रू : जब आपने संगीत रूपक लिखे अथवा कवितायें लिखी तो आपको कश्मीर के जन-जीवन, यहाँ की लोक कथायें, यहाँ के पक्षी विशेष, फूल, सब प्रेरित करते हैं। लेकिन 'व्यथ' (वितस्ता) के प्रति आपका एक भावात्मक अनुराग उमड़ता है। क्या 'व्यथ' आपके अपने जीवन की प्रतीक है।

नादिम : व्यथ (वितस्ता) अन्य गीत-नाट्यों की भाँति ही एक संगीत-रूपक है। वास्तव में यह मेरे जीवन की शाश्वत कहानी है। मैं मरण में विश्वास नहीं करता। मेरी जीवन में आस्था है—शाश्वत जीवन में—और यही आस्था और विश्वास 'वितस्ता' रूपक की रचना का प्रेरक बन गया।



"दीनानाथ नादिम माता लल्लेश्वरी की सन्तान है, जिसने अपनी माता की तरह इतिहास को अपने साँचे में ढाला और अपने पीछे-पीछे चलने पर विवश किया। जिस तरह लल्लद्यद के ज़माने से कश्मीरी साहित्य का इतिहास और एक युग आरम्भ होता हैं। उसी तरह नादिम साहिब के कारण कश्मीर के एक नए-मगर महान युग का सूत्रपात होता है। उनकी आवाज़ जब उभरी तो ज़ोर से उभरी और उस आवाज की घन-गरज, नयेपन और नये अन्दाज़ के सामने पुरानी आवाज़ें दबकर रह गईं। नादिम की आवाज़ नये युग, नये स्वर और क्रांति की आवाज़ थी। यह आवाज़ ज्यों ही प्रकट हुई, इसने सब लोगों को आकृष्ट किया। नादिम ने पुरानी दीवारों को, फांदकर नये अन्दाज़ से पुकारा। ग़ज़ल की पारम्परिक सीमाओं को पार करके उसने नयी सीमाओं की रूप रेखा खींची।"

—मोतीलाल 'साक़ी'

देवदार

□ श्री कमलेश्वर

एकाएक जब नादिम के विषय में सोचता हूँ तो साथ ही मुझे देवदार के पेड़ याद आते हैं। क्योंकि हम मैदान वालों को पहाड़ी प्रदेश के सम्बन्ध में सोचने के साथ ही उस देव वृक्ष देवदार की स्मृति आती है, पहाड़ों के सम्बन्ध में हमारा भौगोलिक ज्ञान केवल यही चित्र प्रस्तुत करता है कि ऊंचे-ऊंचे बर्फ से ढके शिखरों के नीचे कठोर चट्टानों की श्रेणियां होंगी और उनके आँचल में गुरू—गंभीर देवदार के जंगल होंगे।

देवदार और नादिम-—एक वृक्ष दूसरा कवि! कोई एकता नहीं। पर न जाने क्यों मैं व्यक्तित्व के चित्र के साथ ही उस वृक्ष की कल्पना किये बगैर नहीं रह पाता। जैसे एकाएक पहाड़ जाते वक्त किसी मोड़ के कोने पर देवदार का पहला वृक्ष अनायास ही दिख जाता है वैसे ही नादिम भी अनायास दिख गए।

झेलम के पहले पुल पर से होता हुआ रेजीडेंसी रोड पर आया और अपने मित्र* की दूकान 'कश्मीर बुक सेंटर' में खड़ा कुछ किताबें उलट-पुलट रहा था। श्रीनगर में वही एक ऐसी जगह थी जहाँ गप-शप के लिये थोड़ी देर को जा पहुँचता, क्योंकि हर वक्त प्रकृति का सौन्दर्य साथ नहीं देता और किसी दोस्त की जरूरत पड़ जाती है। मित्र अपनी किताबों का हिसाब मिलाने में मशगूल थे और मैं कोई पत्रिका खोले खड़ा था कि मेरे कन्धों पर किसी ने हाथ रखा, मैं मुड़ा तब तक मित्र ने कहा, 'नादिम साहब'!

नादिम मेरे सामने अनायास थे……ठीक मोड़ पर मुड़ते ही दीख जाने वाले देवदार के पहले वृक्ष की तरह। वैसी ही लम्बाई, वैसा ही छरछरापन और वैसी ही गम्भीरता और सबसे बड़ी बात कि वैसी ही निपट पहाड़ी सरलता,

*श्री ओंकार काचरू—सं०

सीधापन और सामान्यता, कुछ भी खास नहीं, बिल्कुल आम लेकिन जो आकर्षण देवदार की आडम्बरहीनता में है, वही नादिम में भी था। दीपशिखा की तरह नुकीले देवदार और देवदार की तरह सरल सुन्दर नादिम !

बोले, "भाई, पता चला था कि तुम घर पर आये थे; लेकिन मैं स्कूल के छात्रों के साथ अमरनाथ गया हुआ था। कल ही वापस आया हूं, अभी चलो···।

मैंने कहा, 'कल सुबह आऊंगा'। और तब कुछ दिन पहले गये, उनके घर की सहसा याद आई—

लकड़ी के मकान की चौथी मंजिल, ज़ीने पर चढ़ता था तो लगता था कि पट्ठे के बने किसी घरौंदे में जा रहा हूं। पैरों की आवाज नीचे की खोखली आवाज के साथ मिल जाती और तब लगता कि बिना कठोर आधार के यह मकान कैसे नौ-दस परिवारों को पनाह दिए हुए है ! ऊपरी मंजिल पर पहुंचते-पहुँचते प्राचीन इमारतों की तरह छोटे दरवाजे मिलते जाते और छतें नीची होती जातीं। छोटी-छोटी कोठरियां, जिनकी सपाट लकड़ी की दीवारें, और कुछ ऐसा प्रभाव कि यह सब-कुछ घूमते कबीले का अस्थाई निवास स्थान हो। खिड़कियों से धुन्ध दीखती थी और पीरपंचाल की पर्वत-श्रेणी किसी शीशे पर पड़ते धुंधले अक्स की तरह चमक रही थी।

पेत्स की चटाइयों पर हम बैठ गए तब लगा कि अब सर छत से नहीं टकरायेगा जड़ कमरों ने ही शायद नादिम को इतनी ऊंचाई के बावजूद बहुत ही विनत बनाया है। यह एक साधारण काश्मीरी का मकान था। और जो अपनी बीबी और चार-पाँच बच्चों के साथ वैसे ही परिवारों के बीच रह रहा था, जो किसी स्कूल में मास्टरी करके अपना जीवन जी रहा था, काश्मीर के महान् जन कवि नादिम का नहीं······अध्यापक नादिम का मकान था यह। पता नहीं किस क्षण कब, कोठरी का कोई हिस्सा उनकी कविता की गुनगुनाहट सुनकर अपनी विवशता के बीच अक्षय आनन्द से भर उठता होगा। वे खुली खिड़कियां उस आवाज़ को काश्मीर की घाटी के लिए उन्मुक्त कर देती होंगी, जो पहाड़ों से घिरे काश्मीर की सीमा में हवा के साथ बार-बार इधर से उधर प्रतिध्वनित होती रहती है।

उस छोटी-सी कोठरी में एक तरफ अनेक बच्चे पढ़ाई की तैयारी में थे और सामने एक कील पर नादिम की पैंट अकेली लटकी थी। नादिम अपने विद्यार्थियों को घुमाने के लिए कहीं ले गये थे, कहाँ······यह उनकी पत्नी को ठीक नहीं मालूम था, कहाँ "शायद गान्धरबल गये हैं, कल या परसों आ जायेंगे।" "हम उनसे कुछ पूछते-पाछते रहे, बातें करते रहे, वे वहीं रसोईघर से बातों का

जवाब देती रही और थोड़ी देर में पीतल के प्यालों में कहवा बनाकर ले आई हमने पूछा, "आप लोग पुराने मकान में नहीं गए अभी तक......"

"वह बन ही नहीं पाता, यहाँ भी ठीक ही है। अपना मकान होता तो और भी अच्छा होता, पर अभी वह मकान जिस हालत में है, वह तो रहने लायक नहीं।"

हम कहवा पीकर सम्पन्न से उन्हीं पट्ठे जैसे ज़ीनों पर खोखली आवाज़ करते उतर आए। कवि के मकान में एक भी कागज़ नज़र नहीं आया। देवदार और चीड़ के पेड़ों से स्वतः वायु के साथ मन्दिर मर्मर संगीत फूटता है अनायास और आडम्बरहीन! वे उस अनादि स्वर के लिए कोई उपक्रम नहीं जुटाते; वह तो प्रकृति है और नादिम का स्वर भी कुछ नहीं मांगता। वह भी उपक्रमहीन है, नैसर्गिक और प्रकृति है।

दूसरे दिन पानी गिर रहा था। सुबह बड़ी मोहक और स्वप्निल-सी थी। तब मैं श्रीनगर के उस होटल में एकदम अकेला था। नादिम के यहाँ जाने की बात पिछले दिन तय हुई थी, पर पानी और सर्दी! ओमकार काचरु ने कमरे में प्रवेश किया और कहा, 'चलो नीचे तांगा खड़ा है।'

"अब तो देर हो गई है, नादिम साहब स्कूल जाते होंगे" मैंने कहा।

"वहीं से आ रहा हूँ, वे इसीलिए देर से जायेंगे" काचरू ने कहा और हम एक चाय पीकर उस धुंध और धीरे-धीरे गिरते पानी में चल दिए।

वही मकान। नादिम घुटने मोड़े हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और तब मैंने एक खास चीज़ देखी। उनकी मोम की तरह तरल, चिकनी, कुछ-कुछ गंदली आखें। उस कवि से किसी सपने की बात नहीं हुई। किसी वाद पर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। साहित्यिकों के बीच पड़ी दरार पर दोनों की आखें टिकी थीं और नादिम कह रहे थे "तुम नये लोगों का फर्ज़ है कि इसे पाट दो। अब तुम्हारे करने से ही होगा। कुछ ऐसा करो कि यह मिट जायें और हम अपनी उस जनवादी परम्परा को और भी मज़बूत कर लें। बड़े साहित्यकारों की भी यही इच्छा अवश्य होगी, पर जोड़ने का काम उनसे अब नहीं होता"।

और लगभग दो घंटे इधर-उधर की बातें होती रहीं, जिनसे सबसे बड़ा निष्कर्ष यही निकला कि कवि पहले आदमी है साधारण......उसमें विशिष्टता के लिए जगह नहीं, व्यक्तित्व के चमत्कार के लिए स्थान नहीं।

और साधारण व्यक्ति का हुक्का गुड-गुड़ करता रहा। दरवाजे की चौखट में झुका वह विनत व्यक्ति खड़ा रहा और मैं एक सत्य का दर्शन करता काचरू के साथ झेलम के पुल की ओर रवाना हो गया। उसे दुकान जाना था

और मुझे कश्मीर के उस अतुल सौन्दर्य को, सहज आत्मा के सत्य को, सँजोने के लिए एकान्त चाहिए था।

उसके बाद जब तक कश्मीर के कोनों में घूमता रहा उन पहाड़ी एकान्त प्रदेशों में सोनामर्ग या आड़ू और पहलगाम या कोकरनाग और विशेषतया लिद्दरवट के उस नितान्त कटे हुए एकाकी खंड में, जहाँ पहाड़ी बक्करवाल और गूजरों से भरी उस छोटी सी दूकान में, मूसलाधार वर्षा की रात में देवदार के बिछावन पर पड़ा कहवा पीता रहा और अनायास ही नादिम का स्वर उन लोगों के कंठ से मुझ तक पहुँचता रहा। बारिश होती रही और पहलगाम का एक आदमी नादिम की कविताएं गुनगुनाता रहा।

तुम 'गुल लाला' हो।
मेरे गीतों पर तुम्हारे ही रूप का रंग चढ़ा हुआ है।
लेकिन……क्या तुम्हें मालूम है मेरे 'लाला' मैं कैसे,
रीते जीवन—घट भरते हुए
तुम्हें मदिरा के रूप में लाया ?
क्या तुम जानते हो (ए नन्हे से फूल)
मैंने कैसे मृत्यु से बचा—छुपा कर तुमको
अपने छन्दों में पिरो कर अमर कर दिया।
और फिर वही गुनगुनाहट…
मेरे मुन्ने के कपोलों पर
भूख की आंच से
जो हल्की-सी लाली उभर आयी
उससे मैंने
तुम्हारी लालिमा में और लाली भर दी।
वे अश्रुकण…
जिनको बरौनियों ने छुपा-छुपा कर
अपनी गोद में झुलाया,
उन्हीं से मैंने तुम्हारे लिए
शबनम का हार गूँथा।
मेरी घायल आकांक्षाओं से जो लहू टपका
उन बूंदों में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब मैंने झलकते देखा।
अपने कोमल उर की धड़कन
और हृदय के लाल रुधिर को मिलाकर।
मैंने…

तुम्हारा अमिट नाता अपने शहीदों से बनाए रखा।

नहीं जानता कि श्रीनगर के महलों में वह आवाज गूँजती है या नहीं; पर जन-साधारण की पत्तों से ढकी झोंपड़ी में वह उभरती है और हवा के साथ और आगे बह जाती है।

देवदार कश्मीर की सीमा के पहरुए हैं गुरु-गंभीर खड़े अपनी सीमाओं की रक्षा कर रहे हैं और नादिम भी देवदार की तरह अविचल शान्त खड़े उन बच्चों को पढ़ा रहे हैं, जो पाठशाला में आते हैं, देवदार और चीड़ स्वतः गाते हैं···हवा उनके स्वर को फैला देती है।

नादिम और देवदार ! पता नहीं, यह दोनों एक साथ क्यों याद आते हैं।

—'पंपोश', दिल्ली मार्च 1958 से साभार

□□□

"नादिम साहिब युग पुरुष हैं। वह कवि भी हैं और गद्यकार भी। समीक्षक के रूप में भी उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। सबसे बढ़कर आप एक इन्सान हैं। जिसकी नस्लों से प्रेम तथा स्नेह की अमृत धारा टपकती है। ऐसे युग पुरुष सदियों के बाद पैदा होते हैं। निस्सन्देह भर्तृहरि की यह सूक्ति इन पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशः काये जरा मरणजं भयम्।।"

—मोतीलाल 'साक़ी'

सचेत और ओजस्वी कवि–'नादिम'

□ श्री शिवदान सिंह चौहान

दीनानाथ 'नादिम' इस दौर के सबसे सचेत और ओजस्वी कवि हैं, और यद्यपि उनकी कविता में कभी-कभी वह कसाव और संगठन नहीं होता जो साधारणतया महजूर की कविता में पाया जाता है, और पुनरावृत्ति-दोष के साथ-साथ उनके वर्णन अक्सर प्रगल्भ, अतिरंजित और अलंकारिक हो जाते हैं, जिससे प्रभाव केन्द्रीभूत न हो पाकर बिखर जाता है, फिर भी नादिम की प्रतिभा 'जोश' मलीहाबादी की तरह अत्यन्त प्रखर और शक्तिशाली हैं। कह सकते हैं कि नादिम के रूप में कश्मीरी भाषा के 'शायरे इन्क़लाब' का नवोन्मेष और विकास हो रहा है उनकी वाणी में जो ओज और दर्द है, वह कश्मीरी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है।

नादिम ने कश्मीरी काव्य में अनेक नये प्रयोग भी किए हैं। उन्होंने परंम्परा से हटकर अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया है और मुक्त-छन्द कविताएं भी लिखी हैं, और बराबर वज़न प्रास से युक्त शब्दों की अटूट समताल से चमत्कार और ओज की सृष्टि करने वाली ध्वनि-प्रधान पर सार्थक कविताएं भी लिखी हैं और गीत-नाट्य भी रचे हैं। ये प्रयोग नये हैं और एक पिछड़े देश में अपने समय से पहले ही किये-गये से लगते हैं, क्योंकि यद्यपि कौमी कल्चरल काँग्रेस ने पिछले वर्ष से कश्मीरी भाषा में 'कोंगपोश' (केशर का फूल) नाम से एक मासिक-पत्र प्रकाशित किया और यथावसर नयी कविताओं के संकलन भी छापे हैं, लेकिन 95 फ़ीसदी अपढ़-अशिक्षित जनता में तो आज भी श्रुति-परम्परा ही काव्य और संस्कृति की वाहक है, जिसके कारण वह कविताएं ही लोक-प्रिय हो पाती हैं, जो न केवल कश्मीर के लोक-संगीत की विलम्बित लयों के अनुसार हों, बल्कि जो कश्मीरी जनों के सुपरिचित जीवन की भाषा में नये भाव-विचारों को उनकी चेतना में मूर्त्त कर दे और एक बार सुनकर ही जिनके सारवाही,

भावना-सिक्तशब्द उनके मानस में बार-बार प्रतिध्वनित होकर सहज स्मरणीय हो जाये और सुख-दुख, श्रम-विश्राम के क्षणों में उनके नित्य-प्रति के जीवनानुभव को बोधगम्य बनाकर सार्थकता का आलोक प्रदान करने वाले चेतना दीप बन जायें। इसी कारण नादिम और दूसरे तरुण कवियों के नये काव्य-प्रयोगों का रसास्वादन अभी सभाओं और मुशायरों में कवियों के मुख से सुनकर ही संभव हो पाता है, आत्म-पाठ और आत्म-गायन द्वारा नहीं।

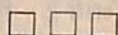
नादिम ने इस बीच काफ़ी काव्य रचा है। आक्रमण के प्रारम्भिक दिनों में उनकी अन्यान्य कविताओं में से 'नाराए, इन्कलाब' सब से अधिक लोकप्रिय हुई थी। उसमें उन्होंने कश्मीर के नौजवानों को हमलावरों के तीर और तुफंग की परवाह न करके कौम की हिफ़ाजत के लिए जंग में जान देकर जावेदां बन जाने को ललकारा था। इनके पश्चात अपनी सशक्त कविता 'इरादा' में उन्होंने कश्मीर का फैसला करने के लिए सात समुद्र पार बैठे साम्राजियों की साज़िशों की तरफ इशारा करते हुए लोगों की बेताबी को व्यक्त किया कि मेरे जंगल जल रहे हैं·····फूल रो रहे हैं, मुझे करार कहाँ से आये ? मैं कौंसिलों और फैसलों का क्यों इन्तजार करूं ? मुझे आग भड़कानी है तो अंगारों से क्यों डरूँ ? 'सों'-त-त'-हर्द' (बहार और खिजाँ), 'प्रिछ्न छुम' (मुझे पूछना है), और 'सो विज़' (वह घड़ी) मेरी दृष्टि में नादिम की सर्वश्रेष्ठ कलात्मक रचनाएं हैं और संभवतः कश्मीरी काव्य-साहित्य में अपना स्थायी मूल्य रखेंगी। 'सोंत-त'-हर्द' में नवागता बहार का उन्मादकारी सौंदर्य और प्रकृति का हर्षोल्लास पाठक की कल्पना में सजीव और साकार हो उठता है, पर उसके पश्चात् ही कश्मीरी जनता के बिडम्बनापूर्ण जीवन का चित्र मन में एक क्रूर विक्षेप और व्याघात पैदा करता है—कसक-सी महसूस होती है कि एक ओर जन-जीवन पर खिजाँ छायी हैं। नादिम इन दोनों विपरीत दशाओं के विषय अनुभव की समन्विति इस सक्रिय भाव से करते हैं कि 'नई बहार जम्हूर का ताज पहनकर चमन को नया दहेज देने निकली है और नादिम अपने हृदय का जलाव लिये आज सच को जगाने आया है।' 'प्रिछुन छुम' में कवि का मानव-दर्प और भी अदम्य और उदात्त हो जाता है। 'कहते हैं कि मशरिक में गाश (रोशनी) खेलने लगी है, सियाह बख्तों के दामन में मोती टाँकने लगी है। कहीं यह पिंजरों के दरवाजे तो नहीं खोल आई ?—मुझे आसमान पे चढ़के सितारों से पूछना है।' इसी उदात्त अन्दाज में यह कविता आद्यन्त चलती है, और वर्ग-समाज के अन्याय और वैषम्य का तीखा चित्र खींचती हुई और नई नवेली बहारों, ख्वाजाज़ादियों के गले में लटके मोती के हारों, मग़रूर सरमायेदारों और सामंती ताजदारों की छाती पर चढ़के जवाब तलब करता हुआ कवि अन्त में अपने हमनवा अदीबों और

फ़नकारों की ओर मुखातिब होता है—'एक तरफ दौलत, हशमत और राहत है। दूसरी तरफ नंगे जिस्म, तेही-दामनी, फ़ाका और गुरबत है। वह किस जगह अपनी ग़ैरत का क़लमदान लिए बैठे हैं, मुझे अदीबों और फ़नकारों से पूछना है।' 'सो विज़' (वह घड़ी) में नादिम ने उस नेक घड़ी की उदात्त कल्पना की है जिसमें अपने जीवन और अपनी महत्ता की चेतना पाकर लोगों की शक्ति इतनी दुर्दमनीय और अपार हो जायेगी कि उनकी 'ग़ैरत तान से छाती बढ़े और बढ़ के आँधी से लड़े' 'टूट जायें दाँत बादे-तुन्द के, 'जर्द पड़ जाये रूए आस-माने तीरो-तार'—का, और जिस घड़ी मेरी (अर्थात लोगों की) 'हिक़मत बनके मेमारे जदीद,' 'बख्त टूटा हुआ इंसा का करेगी तामीर,' 'बेज़बानों को ज़बाँ बख्शेगी' जब 'तदबीरों के खम होंगे दुरुस्त,' कट के गिर जाएगा तौके लानत, और जंजीरें हों सब चकनाचूर।' उस नेक घड़ी में 'सर बुलन्द हो के रहेगा मज़दूर' और 'नूर अफशां होगी गरीबों की शिकस्ता तक़दीर।' इसमें संदेह नहीं कि इन्सान की अज़मत के उस आलम में 'चाँद-सितारे आसमान से उतर कर नादिम जैसे आज़ाद इन्सान (अवाम) का सर चूमेंगे !

सामन्ती गुलामी का अन्त करके किसानों को ज़मीन का मालिक बनाना यहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रोग्राम रहा है (और इस समय नये ज़रई क़ानून के द्वारा इस प्रोग्राम को अमली जामा पहनाया जा रहा है)। इसी प्रकार सोवियत रूस और नये चीन के विरुद्ध कश्मीर को साम्राजियों का फ़ौजी अड्डा न बनाने देने का दृढ़ निश्चय भी यहाँ के राष्ट्रीय नेता बार-बार प्रकट करते आये हैं। फिर भी साम्राजी अपनी कोशिशों से बाज नहीं हैं कभी बँटवारे के लिए, कभी यू०एन० शासक के लिए तो कभी कामनवेल्थ की फौजें लाने के लिए तरह-तरह के जाल बिछाते आए हैं। निश्चय ही कश्मीरी जनता के लिए 'अमन' का सवाल ज़िन्दगी और मौत का सवाल है। इन दोनों प्रश्नों पर अधि-कतर कश्मीरी कवि बार-बार और हर नयी परिस्थिति से जनता को आगाह करने के लिए लिखते आए हैं। पहले प्रश्न पर नादिम का गीति-नाट्य 'जमीन तसइन्जइ यमि कमाव खेत' (यह जमीन उसकी है जिसने खेत कमाये) जो पहाड़ी नृत्य 'भाँगड़ा' के साथ मिलाकर हर जगह खेला गया है, और दूसरे प्रश्न पर उनकी तीन कविताएँ 'जंगबाज़ खबरदार', 'ब ग्व न अज़' (मैं आज नहीं गाऊंगा, और 'वावन वोन नम' (वायु ने कहा) बिशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'जंगबाज खबरदार एक खुली चुनौती है—'ठहर ओ लईन !' यह हिरोशिमा नहीं। देख, आबशार गरज रहे हैं···इस नौबहार को देख···यह वतन मेरा बेदार है···इसके उस्तवार इरादे को देख····फ़साद, फितना कीना, बम और मशीनगन···लेकर आगे कदम न बढ़ा !' 'ब ग्व न अज,' में नादिम इस

उस्तवार इरादे' को अधिक मूर्त्तता प्रदान करते हैं और घोषणा करते हैं कि जब तक 'जंगबाज़ जालसाज़' देश पर घात लगाये बैठे हैं 'मैं नहीं गाऊंगा'। (आज) गुलों, बलबुलों, सुम्बलों, मसवलों का पुर ख़ुमार मुहब्बत का मतवाला, मधुर-मधुर···नग्मा कोई।' यह एक बहुत लम्बी कविता है, और मेरी दृष्टि में इसके मूल में किंचित नकारात्मक दृष्टिकोण है, जो अन्ततः एक ऐसी आवेशमयी शैली को जन्म देता है जिससे कला का स्थान अतिशयोक्ति-पूर्ण वक्तव्य ले लेते हैं। 'वावन वोन नम' अपेक्षाकृत अधिक गठित और तारतम्यपूर्ण कविता है और इसमें साग-सब्जी ऊगाने वाले मलियारों, कारखानों में काम करने वाले मज़दूर (जुलाहों) और खेतों में काम करने वाले किसानों की श्रम-क्रियाओं के सुन्दर भाव चित्र हैं—'वायु इन सब के पास से होती हुई आई है और उसने सभी कामगारों और मेहनतकशों का यही नारा सुना है कि 'अर्ज़ि कश्मीर अपनी इसकी नेक तक़दीर अपनी'···'सहें कैसे बारूद घर यह वतन हो···सहें कैसे दोज़ख यह बाग़ेअदन हो!'—इस कविता को भी अब एक नृत्य-रूपक बनाकर अभिनीत किया जाता है। इन कविताओं को पचासों हज़ार लोगों ने स्वयं कवि की कड़कती हुई सशक्त आवाज़ से सुना है। नादिम ने इस वर्ष (1950—51) मेरे स्थान पर क़ौमी कल्चरल काँग्रेस का कार्य भार सम्हाला है, और वे उसके प्रधान-मंत्री हैं।

—'साहित्यानुशीलन' से साभार उद्धृत



"इसमें सन्देह नहीं नादिम साहिब आधुनिक-युग के सर्वोच्च कवि हैं।··· इनकी शब्दावली बहुत रोचक तथा आकर्षक है। उनकी कविता में यह विशेषता पायी जाती है कि उन्होंने स्थानीय प्रतीकों का प्रयोग किया है जो दूसरे कश्मीर शायरों में नज़र नहीं आते हैं।···नादिम की शायरी नैसर्गिक तथा जन्मजात है।"

—गुलाम रसूल 'सन्तोष'

'नादिम' और कश्मीर

□ श्री शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम'

लगभग पिछले चालीस वर्षों से मुझे कविवर नादिम से समय-समय पर मिलने, वार्तालाप करने, उनकी रचनाओं को पढ़ने और उन पर चिन्तन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

'नादिम' (श्री दीनानाथ कौल) से मेरी पहली मुलाकात 1947 के उस संक्रांति काल में हुई, जब राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा था। देश का स्वाधीनता संग्राम चरमोत्कर्ष पर था, बटवारे का निर्णय लिया जा चुका था। 'कश्मीर छोड़ दो' का आन्दोलन छिड़ चुका था। घटनाएं इतनी तेजी के साथ घट रही थीं कि उनका अनुसरण करना मुश्किल था।

इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य-जगत पर भी पड़ना अनिवार्य था बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इसके लिए जो भूमिका साहित्यकारों को निभानी थी, उसका क्षेत्र विस्तृत हो चुका था।

कश्मीर की काव्यधारा का प्रभाव यों तो चिरकाल से निरन्तर जारी था जिसका आदिस्रोत ललद्यद के अमर 'वाखों' और शेख नूरुद्दीन वली (नुंद-ऋषि) के आध्यात्मिक श्रुकों (श्लोकों) के रूप में प्रकट हुआ, हब्बा खातून व अरणीमाल के 'लोल' गीतों अनेक संतोव सूफी कवियों के पद्यात्मक आख्यानों तथा प्रेममार्गी कवियों की गजलों ने जिसको परिपुष्ट करके पूर्ण वेगवती तरंगिणी का स्वरूप प्रदान किया और स्वातंत्र्य-संग्राम के दिनों में देश की अनेक प्रचलित उपधाराओं से समृद्ध होती हुई जो सुधामयी साहित्य-सरिता प्रवहमान रही, वह कश्मीर घाटी के जनमन को रिझाती, सरसाती रही। इसमें परंम्परागत रीतिकालीन एवं रुढ़िवादी भावधारा के साथ-साथ नई चेतना का सांकेतिक

अभिव्यंजन भी यदा-कदा होता रहा। कविवर महजूर की राष्ट्रवादी काव्य रचना तथा क्रांतिवादी शायर 'आजाद' की स्वरलहरी इसी काल में जनमानस को उद्वेलित करती रही। प्रवाह अक्षुण्ण था मगर युग के मोड़ का तकाज़ा कुछ और ही था। दुर्भाग्य से कविवर आजाद का असमय निधन हो गया और महजूर भी ज़्यादा देर तक साथ न दे सके। जब तक रहे भी, वांछित स्फूर्ति, सक्षमता और प्रबलता से नया दिशादर्शन करने में असमर्थ रहे।

ऐसी परिस्थिति में साहित्य-सृजन के नये आयामों को जन्म देने और नई चेतना को जगाने का उत्तरदायित्व जिन युवा कवियों के कन्धों पर आ पड़ा, उनमें सबसे प्रमुख और प्रतिनिधि स्वर कविवर 'नादिम' का था।

'नादिम' सहसा रंगमंच पर नहीं आये। वे कश्मीरी साहित्य के चमन में एक नवजात कुसुम के रूप में पहले ही अपनी सुरभि बिखेर चुके थे। उर्दू रचनाओं द्वारा उनका व्यक्तित्व अदब की दुनियां में पहले ही प्रकाश में आया था। स्वाधीनता-संग्राम में अपनी छोटी-सी क्रान्तिकारी भूमिका निभाकर उन्होंने देश भक्ति की दीक्षा भी ली थी, मगर कश्मीरी साहित्य-गगन पर द्युतिमान 'भोर के तारे' का जो महत्वपूर्ण पद उन्हें ग्रहण करना था, वह उन्हें 1947 के उपरान्त मिला और बड़ी आन-बान के साथ चिरस्थाई रूप में प्राप्त हुआ।

इन दिनों कश्मीर को राजनैतिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय रूप से युद्ध-रत रहना पड़ा। स्पष्ट है कि इस समय की काव्य रचना एवं साहित्य सृजन का प्रतिनिधि रूप रूमानी पलायनवाद तो हो नहीं सकता था। युद्ध-आह्वान एवं आक्रांता के विरुद्ध उद्घोष अपरिहार्य था और हुआ भी ऐसा ही। पहला अवसर था, जब कि युद्ध की मोर्चेबन्दी की तरह सांस्कृतिक मोर्चेबंदी भी की गई। इसी मोर्चे का नेतृत्व करते हुए कविवर नादिम ने अपना स्वर यों मुखरित किया—

> बथुन छुम जंगुक साज़ो सामनॅ लॉगिथ।
> करॅन् गथ घरस पथ म्यॅ पर्वान लॉगिथ।
> बॅ कौमी सिपाह छुस वतन छुम बचावुन।।

[मुझे युद्ध की साज-सज्जा से सुसज्जित होकर उठना है। पतंगा बनकर मुझे स्वदेश पर न्यौछावर होना है। मैं राष्ट्र सैनिक हूं, मुझे वतन की रक्षा करनी है।]

इस काल की स्थिति का वर्णन करते हुए कविवर 'नादिम' ने स्वयं एक जगह कहा है कि 1947 की इस कड़ी परीक्षा ने हमारे आंदोलन को और भी निखारा। परिणामतः कश्मीरी काव्य एवं साहित्य में भी एक बड़ी तबदीली

आई। नये युग की इस कविता ने जहां राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुरूप विषय और वस्तु की दृष्टि से नई शैलियों को जन्म दिया, वहां नवोदित कवियों एवं साहित्य सेवियों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। इसलिए देश के लगभग सभी कवि एवं साहित्यकार एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक मोर्चे के रूप में संगठित हुए।"

सक्रिय युद्ध की ज्वालाएं कालांतर में शांत हो गई, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाज के वर्गवाद की संघर्षाग्नि भीतर ही भीतर सुलगती रही। साम्राज्यवाद, सामंतशाही और पूंजीवादी का निहित स्वार्थ सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध आये दिन षड्यंत्र करता रहा। यह दशा बहुत नाज़ुक थी। जनता का साथ देने वाला सांस्कृतिक मोर्चा इस समय भला कैसे मुख मोड़ता! नादिम के ही नेतृत्व में इस षड़यंत्र का पर्दा फाश किये जाने का उपक्रम किया गया। ये दिन थे जब नादिम ने परम्परागत छन्दों की बंदिश से मुक्त कश्मीरी कविता की सृष्टि करके नये युग को यों आवाज दी—

बॅ ग्यव न अज़
गुलन तॅ बुलबुलनं तॅ
मसवलन हुन्दुय खुमारॅ होत तॅ मारॅ-मोत

मोदुर मोदुर तॅ न्यंदरिहोत
सु नरम कांह!
ति क्याज़ि अज़
गुबार गर्द जंगकिय
खटन छि रंग मसवलन.........

[मैं आज गुलों-बुलबुलों के वे तराने नहीं गाऊंगा जो मुझे मीठी नींद सुलायें, क्योंकि युद्ध का गर्दा गुबार रूपसियों के रंग रूप को मटियामेट कर रहा है]।

इस नई आवाज़ से प्रेरित होकर नये दौर का कश्मीरी जनमत नई उमंगों से ओत-प्रोत हो गया। चुनौती का यह स्वर मात्र युद्धविरोधी एवं नकारात्मक नहीं था, इसमें उस लक्ष्य की भी सूचना थी, जिसको पाना जनजन का चिर-भिलषित सपना था। वह सपना था—सबके सुहावने भविष्य का, आनेवाली आशा भरी प्रातवेला का—इस संदर्भ में नादिम की कविताएं 'म्य छम आश पगहॅच' (कल मेरी आशा का दिन है), 'अमन अपीलि प्यठ दसखत' शांति अपील पर हस्ताक्षर), 'म्यान्यो शारो क्याह वोन '(मेरी कविता का मुखर स्वर) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनमें उद्देश्य की सूचना के साथ-साथ कर्त्तव्य का भी निर्देश है।

एक स्थान पर वे कहते हैं—

धु असि रॉछ़ि रोज़ुन इरादन हंदिस नौ खुमारस,
तॅ व्ययि रॉछ़ि रोज़ुन छु माज्यन हॅंद्यन ऑविल्यन
ज़ॉविल्यन पगहचन खाबनइॅ…

[हमें निष्ठा के नये उन्माद की रक्षा करनी है और रक्षा करनी है माताओं के नन्हें-नन्हें कल के सपनों की…]

इस दौर की काव्य रचना में भविष्य की आशा का स्वर प्रधान था, जिसके सम्वादी स्वरों में तीव्रता, रोष, युद्ध घोष, उत्साह-वर्धन' देश-प्रेम और विषमता के प्रति विद्रोह की भावना सम्मिलित थी। नादिम की मान्यता थी कि संवेदनशील कवि अगर जन भावना को स्वर न दे, उनकी अभिलाषाओं और आशाओं को आत्मसात् करके मुखरित न करे तो वह काव्यसाधना अकारथ होगी। इस धारणा का प्रभाव कविवर नादिम पर इतना गहरा हुआ कि वे सक्रिय रूप से साम्यवादी आंदोलन में भाग लेने लगे। वे इस दंभ के हामी नहीं रहे कि कहा कुछ जाय और किया कुछ जाय। कथनी और करनी के एकीकरण में उन्होंने एक ऐसी डगर अपनाई, जिसके कारण उन्हें सांसारिक सुविधाओं की अनेक उपलब्धियों से वंचित रहना पड़ा।

मेरा उनका साथ इसी समय का साथ रहा। ऐसे अनेकों अवसर आए, जब नादिम के सामने दोराहे आए,—एक ओर सुख समृद्धि का प्रलोभन था तो दूसरी ओर उद्देश्य-पूर्ति की कंटीली बनवीथी। उन्होंने सदैव सहर्ष दूसरी ही राह अपनाई। न अपनी जन्मभूमि-कश्मीर को छोड़ा और न ही अपने लक्ष्य को। ये प्रेरणाएं उनकी आत्मा से मेल खाती थीं। यही कारण था कि जब भी 'नादिम के उद्गार मंच पर प्रस्तुत होते थे, वे आन-की-आन में कश्मीर की लोकवाणी का रूप धारण करते थे। '1953', 'हेलाहेल', 'म्य छम कॉम बाकी' 'सोंथ तॅ हरुद और ऐसी अनेक कविताएं जिस तेजी के साथ जनप्रिय हुईं, उसको देखकर हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार कमलेश्वर को बरबस लिखना पड़ा—

"…कश्मीर में जहाँ भी घूमा—सोनामर्ग या पहलगाम, कोकरनाग लिदरवठ—मुझे चरवाहे मिले या किसान, मजदूर मिले या गड़रिये—सबकी जबान से 'नादिम' के गीत मुझे सुनने को मिले। यह आवाज जनसामान्य की फूस से ढकी झोपड़ियों में सुनाई दी, पवन-झकोरों के साथ यह स्वरलहरी आगे ही आगे बढ़ती जा रही हैं"। (देवदार)

यों 'नादिम' कश्मीर के साथ भावनात्मक रूप से एकाकार हो गए। मेरे विचार में नादिम और कश्मीर का यह अविछिन्न और अटूट सम्बन्धव तमान

कश्मीर की बहुत बड़ी उपलब्धि है। कविवर महजूर के बाद 'नादिम' ही वे कवि हैं जिन्हें कश्मीर भर में इतनी लोकप्रियता प्राप्त है

लोकप्रिय कवि 'नादिम' का इतना रोल भी उनकी अनश्वरता तथा शाश्वत प्रसिद्धि के लिए पर्याप्त था, मगर विधना को इस अप्रतिम प्रतिभा का सर्वतोमुखी दर्शन भी कराना था, सो उस दौर का भी शीघ्र ही आरंभ हुआ, जिसने कवि नादिम का रूप और भी निखारा। ।

हुआ यह कि परिस्थितियाँ बदलीं। पर्वतों के उत्स से निसृत चपल-चंचल सलिल धारा उछलती कूदती जब समतल में आई तो कुछ ठिठकी। उसके बहाव में ठहराव आया और उसकी गहराई बढ़ती गई। कश्मीरी काव्यधारा का यह दूसरा दौर था जो अब तक जारी है। सोभाग्य से 'नादिम हमारे बीच में सकुशल विद्यमान हैं। भगवान उन्हें चिरायु प्रदान करें। उनकी काव्य साधना का क्रम कभी रुका नहीं, क्योंकि वह नैसर्गिक है। हां, उसकी गति में वेग के स्थान पर गंभीरता आई है, बाह्यभिव्यजंन की जगह आंतरिकता ने ले ली है और विषमता की जिस विडम्बना का दर्शन वे पहले स्थूल रूप में कराते थे, अब उसका बिम्बीकरण वे सुक्ष्म भावभिव्यजंन द्वारा कराने लगे हैं। वे पहले भी सक्षम और सशक्त कवि थे और अब भी मूर्धन्य स्थान के क्रांतदृष्टा शायर हैं।

कविता का जो मानदण्ड नई कविता के संदर्भ में नियत किया जा रहा है, उसमें अन्तर्दृष्टि (दाखलियत) को प्रमुखता दी जाती है। इधर नादिम की जो रचनाएं प्रकाश में आई हैं, उन सबमें इन अपेक्षाओं का निर्वाह खूबी के साथ हुआ है। चूंकि मेरा यह कथ्य समीक्षात्मक नहीं है इसलिए मैं 'नादिम के काव्य सृजन का विवेचनात्मक विश्लेषण नहीं कर रहा। इतना भर कहना है कि जो सम्वर्द्धन कश्मीरी काव्य साहित्य को 'नादिम की साधना द्वारा हुआ है, वह अप्रतिम और अभूतपूर्व है। विषयों की विविधता हो या अभिनव शैलियों का प्रस्तुतीकरण, भाषा का परिमार्जन हो या भावों की प्रांजलता, अर्थ की गंभीरता हो या आकार का सौष्ठव, लोकमानस के भावों का प्रतिनिधित्व हो या आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति हर रंग और हर रूप में नादिम का योगदान निराला और अछूता है।

यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि उच्च कोटि के विश्व साहित्य में नादिम की कृतियाँ सगर्व शामिल होने योग्य हैं।

उनकी रचनाओं में जहां परम्परागत गजलों, नज़्मों, रूबाइयों तथा पहेलियों आदि का समावेश है, वहां ओपेरा, सॉनेट एवं आज़ाद नज़्मों के रूप में भी उन्होंने कश्मीरी काव्य साहित्य का कोष भरकर उसका दायरा विस्तृत कर

दिया है। यही नहीं, गद्य की अपनी अनूठी कृतियों द्वारा नादिम ने कश्मीरी की भाषा-निधि को भी प्रांजल और समृद्ध बनाया है। रेडियो कश्मीर द्वारा प्रसारित उनके गद्यात्मक लेख इसका प्रमाण हैं।

इस बात का अवश्य खेद है कि लगभग आधी शती से कश्मीरी साहित्य को निखारने संवारने वाले इस देदीप्यमान नक्षत्र की कृतियों का कोई प्रामाणिक संकलन अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। यों तो इस अभाव से भी कवि नादिम की महत्ता ही झलकती है क्योंकि पुस्तकाकार संकलन के न होते हुए भी यह अमर कवि सर्वत्र छाया हुआ है। आप कश्मीरी साहित्य का विषय लीजिए, नादिम के उल्लेख बिना उसका विवरण पूर्ण नहीं होगा।

फिर भी देश ओर काल के तकाज़ों को सदा उपेक्षित नहीं किया जा सकता। समय तेजी से बदल रहा है। हमारी पीढ़ी के स्थान पर नई पीढ़ी सामने आ रही है। दस्तावेज़ या रिकार्डों के अभाव में श्रुतिपरक यादें अधिक टिकाऊ नहीं होतीं, अतः यह परमावश्यक है कि युगनिर्माता कविवर नादिम की अमर वाणी का एक शोभनीय संकलन प्रकाशित हो।

इधर कल्चरल अकादेमी की ओर से 'शिहुल कुल' (सायेदार वृक्ष) के शीर्षकसंग्रह के लिए कुछ अनुदान की खबर छपी है, मगर मालूम नहीं कि संग्रह प्रकाशित है या नहीं। कुछ छिटपुट किताबचे भी उपलब्ध हैं, मगर इनसे इतने कदावार साहित्य सेवी का अवलोकन व प्रतिपादन संभव नहीं।

□□□

"कविवर 'नादिम' ने बदलते ज़माने के मिज़ाज और तक़ाज़ों के अनुरूप हमारे 'इथॉस' (अन्तरात्मा) की पुनर्व्याख्या करके इसकी महक और ताज़गी को सुरक्षित रखा है। यही युग धर्म 'नीलमत' से बराबर आज तक कवियों तथा मनीषियों द्वारा परवान चढ़ता आ रहा है।"

—स्व० प्रो० काशीनाथ दर

दीनानाथ नादिम—व्यक्तित्व तथा कृतित्व

□ डॉ० जियालाल हण्डू

सन् 1947 के जुलाई मास में मेरा मिलन श्री दीनानाथ नादिम के साथ सबसे पहले गांधी मैमोरियल कालेज, जम्मू (तत्कालीन पी० डब्ल्यू कालेज) के विशाल प्राङ्गण में हुआ। उस समय यह प्रगतिशील युवा लेखक देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत साहित्य की संरचना में संलग्न था। कश्मीर में मई 1946 से ही 'कश्मीर छोड़ो' आादोलन उग्र रूप धारण कर रहा था और सामन्तशाही (डोगरा शासन) के विरुद्ध अभियान छिड़ गया था। यह अभियान देश-प्रेम तथा प्रगतिशील तत्वों पर आधारित था। स्पष्ट लग रहा था कि नादिम का अन्तस् अन्याय के विरुद्ध, चाहे वह राजनीतिक शोषण का अन्याय हो अथवा वर्गीय समाज में पूंजीपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण, वह सदा इन सब के प्रति जागरूक था। व्यक्तित्व की इसी आन्तरिक संरचना ने उन्हें परिस्थितियों की मांग के वश में तथा बदलते हुए संदर्भों में एक साहसी साहित्यकार का रूप प्रदान किया था। पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की बुराइयाँ उन्हें सदा चुभती रहीं।

नादिम व्यक्तित्व के धनी थे। वे न किसी की अंगुली पकड़कर आगे बढ़े और न ही उन्होंने किसी का पल्ला पकड़ा। उन्होंने अपना परिचय और विज्ञापन ढूंढने की भी कभी कोशिश नहीं की, जिसके परिणामस्वरूप वे आजीवन लल्लद्यद मेमोरियल स्कूल, श्रीनगर से संबद्ध रहे। उन्होंने मान-प्रलोभन के लिए अपने विचारों को कभी नहीं बदला। वे प्रेमचन्द की भाँति गरीबी में जन्मे और पले। उनका समूचा जीवन जनता का जीवन रहा। उनके पास कलाकार का हृदय तथा दार्शनिक का मस्तिष्क है। उन्होंने जीवन पर्यन्त अपने आत्मसम्मान और बड़प्पन की रक्षा की है। वे निर्भीक और स्वाभिमानी व्यक्ति रहे हैं।

विनयशीलता एवं नम्रता भी उनमें अधिक है। उनके व्यक्तित्व में एक आर्द्र मानवीय संवेदना सन्निहित है। उनकी बाह्य संरचना भी बड़ी सुगठित है, लंबा कद, स्वस्थ शरीर और सुन्दर मुखाकृति सबको आकर्षित करती है।

भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात अक्तूबर 1947 में कश्मीर का मधुवन पाकिस्तानियों द्वारा समर्थित कबाइलियों ने उजाड़ दिया। उनके आक्रमण तक कश्मीर का वातावरण तनावपूर्ण था। आक्रमण के तुरंत बाद यहाँ के देश-भक्त एकत्र हुए। उन्होंने कल्चरल फ्रन्ट के नाम से एक साँस्कृतिक मोर्चे का गठन किया जिसके सदस्य कश्मीर के विभिन्न प्रगतिशील युवा लेखक तथा कर्मठ समाज-सेवी थे। इनमें से दीनानाथ नादिम, नूर मुहम्मद रोशन, नन्द लाल अम्बरदार, अलमस्त कश्मीरी, अर्जुन देव मजबूर, गुलाम अहमद फाज़िल तथा प्रेमनाथ प्रेमी आदि के नाम प्रमुख हैं। इन सबने देश की अखण्डता, धर्मनिरपेक्षता तथा मान-मर्यादा की रक्षा के लिए शत्रु को ओजपूर्ण वाणी में ललकारा। जन-आन्दोलन ने इन कश्मीरी साहित्यकारों की सृजन-प्रक्रिया को एक नई दिशा दी।

संवेदनशील हृदय रखने वाले नादिम इस मोर्चे के अगुआ बने। उन्होंने कश्मीरी कविता में राष्ट्रीय-प्रगतिवादी प्रवृत्ति को जन्म दिया। हिन्दी में उस समय प्रयोगवाद का बोलबाला था जिसमें नए बिम्बों तथा प्रतिमानों के माध्यम से भावाभिव्यंनाओं को एक नया स्वरूप प्राप्त हो रहा था।

राष्ट्रीय प्रगतिवादी स्वर को मुखरित करते हुए नादिम ने जनता में एक नवीन स्फूर्ति को जन्म दिया। वे आधुनिक काल के सफल कवि हैं। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वे अपने देश के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से प्रभावित हैं। सन् 1947 में कबाइली आक्रमण के समय वे अपनी कविता रूपी असि से शत्रु का सामना करने के लिए उद्यत हुए। उस समय उनकी कविताओं में मेघ जैसी गर्जना के साथ-साथ अटल विश्वास की हिलोर विद्यमान थी। उनमें मनोबल की दृढ़ता तथा आदर्श का संकेत सुन्निहित रहा। उनकी प्रेरणादायिनी कविताओं से कश्मीरी जनता भी देश से सामंतवादी व्यवस्था को मिटाने के लिए तैयार हो उठी। उनके स्वर के साथ स्वर मिलाकर समकालीन कवि भी शत्रु को ललकारते हुए कह उठे—

हमला आवर खबरदार
हम कश्मीरी हैं तैयार।

उनकी वाणी में जन-जागरण के प्रति विश्वास है विश्व मैत्री और मानवतावाद का संदेश है। उनका आस्थावान हृदय कह उठा—

पकुन छुम
पकुन छुम म्ये जमहूरक्यन मशवरन प्यठ

नज़र म्ये छम कशीरिक्यन रहबरन प्यठ
तॅ बेयि कॉशिरियन प्यठ
म्ये दुनिया छु मिलचारकिन्य कुन बनावुन
म्ये छुम ताज़ॅ यावुन
म्ये छुम ताज़ॅ यावुन, म्ये छुम ताज़ॅ यावुन।

अर्थात् मुझे लोकतंत्र के पथ पर चलना है, मेरी दृष्टि कश्मीर के देश-भक्तों पर टिकी हुई है। मुझे सारे संसार को विश्वमैत्री से एक बनाना है। मुझमें जवानी का जोश है, जोश-ए-जवानी है, जोश-ए-जवानी है…

यह वह समय था जब लोकतंत्र की राह पर चलने की भावभूमि तैयार हो रही थी। नादिम का अनुगुंजन करते हुए नूर मुहम्मद 'रोशन' ने 'वतन आज़ाद थावुन छुम' की भावाभिव्यक्ति इस प्रकार की—

वतन आज़ाद थावुम छुम
नोवुय कश्मीर बनावुम छुम
मुहब्बत बॉगरावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम।

अर्थात मुझे अपने देश को स्वतंत्र करना है तथा एक नया कश्मीर बनाना है। मुझे प्रेम का संदेश फैलाना है, मुझे एव नया कश्मीर बनाना है।

नादिम से पहले कश्मीरी काव्य-कानन को महजूर और आज़ाद पल्लवित पुष्पित कर रहे थे। महजूर ने कश्मीरी कविता को एक नवीन जीवन से अनुप्राणित किया। उसने कविता-कामिनी के शरीरात्मा को नवीन कल्पना, उपमा तथा रूपक के भाव-पक्ष और कला-पक्ष से समृद्ध किया। उसके विचार छायावादी कवियों की तरह रोमांटिक थे। कवि आजाद की कविता में प्रगतिवाद के तेवर का स्वर था। नादिम अपनी काव्य-परम्परा में आज़ाद का सूत्र ही हाथ में लेकर आगे बढ़े उन्होंने कविता-कामिनी को एक नई दिशा देकर रूढ़ि एवं परम्परा से मुक्ति दिलवा दी। उनके विचार नवीन थे, तान नई थी और स्वरूप-प्रकार नया था। व्यक्तिगत इश्क व मुहब्बत से कविता-कामिनी को छुटकारा दिलवाकर उन्होंने उसे जनसाधारण के समीप ला खड़ा कर दिया। अब इसमें जन-सामान्य के दुख-दर्द, हर्षोल्लास और नई उभरती आशाओं की अभिव्यक्ति मिली। उनके काव्य में कल्पना एवं भाव का सामंजस्य स्थापित हुआ। वे पहले कवि थे जिन्होंने कश्मीरी कविता में मुक्त छन्द का प्रयोग किया और चतुर्दश पदियाँ (सोनेट) लिखीं। हिन्दी के प्रगतिवादी कवि निराला की तरह ही उन्होंने कश्मीरी कविता में मुक्त छन्द या रबर छन्द को अपनाया।

नादिम ने जिस राष्ट्रीय प्रगतिवादी स्वर की शक्ति प्रदान की, उसके आधार पर वे संसार को एक नए साँचे में ढालने की कामना करते थे। उनकी कल्पना 'नया कश्मीर के लिए फड़फड़ा रही थी। शत्रु की दृष्टि कश्मीर के मधुवन से हटकर अपने पैसे की ओर झुकने के बाद इस समस्या में एक उलझन उपस्थित हुई। नादिम इस उलझन को भाँप कर तह तक पहुँच गए और उन्होंने अपनी कविता 'शांति-कोयल' में ये उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किए :—

आँचल में धन और अशरफियाँ लेकर,
फिरंगी बाजीगर अब भी फिर रहा है,
सोने की हथकड़ियाँ आँचल में छिपाए हमें धोखा देने आया है।

कविता की ये पंक्तियाँ कितनी सुन्दर हैं। इनमें कोरी भावुकता के स्थान पर सशक्त विचारों का प्रकटीकरण है। संपूर्ण कविता में माधुर्य तथा उपमा का उचित प्रयोग किया गया है।

कश्मीर की उलझी हुई समस्या से प्रेरित होकर नादिम ने जो कविताएँ लिखीं, उनमें वे एक देशभक्त के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं। इन कविताओं में वे भौगोलिक सीमाओं से बाहर आकर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के साथ कश्मीर-समस्या संयुक्त कर गये। उन्होंने कश्मीरी कविता के हाशिये में भी रंग भरकर कैनवास को काफी व्यापक रूप प्रदान किया। कहीं-कहीं उनकी कविताओं में विषम और कला का सामंजस्य प्रतीत नहीं होता। ऐसी अवस्था में 'गर्म गर्म लाल लाल यह खून' अभिव्यक्ति में केवल नारेबाजी प्रतीत होती है क्योंकि यहाँ कोरी राजनीति का ही प्रदर्शन उपलब्ध है। फिर भी उनके संदेश में सार्वभौमता तथा विश्वजनीनता का कोई अभाव नहीं। वे अपने समाज के प्रति पूर्णतया सजग थे। उनकी उत्कृष्ट कविताओं में 'मुझे कल की आशा है' को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। इस कविता को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग माँ बनने का स्वप्न लेने वाली नारी से सम्बद्ध है। दूसरा भाग अपने प्रियमत से मिलन की आशा का सूचक है और तीसरे भाग में उस स्त्री का चित्रण है जो अपने पति के आने की प्रतीक्षा में बैठा है। कला के आधार पर यह कविता सर्वश्रेष्ठ है इसमें भावों की सुकुमारता एवं अनुभूति की गहनता के दर्शन होते हैं। कवि ने कहा है—

"मेरे पुत्रों का पिता आएगा,
गण्डी में नवीन पुष्प तथा गुलजार होंगे,
मेरे लिए छींट, बेटी के लिए अलंकार होंगे,
"हबीब" की खुतन के लिए रुपए होंगे,"
—'कल उसे मिलना है,

जब वह (पति) मेरी मिन्नतें मांगेगा, उसके नयनों की ओर झाँकूँगी,
जब आलिंगन होगा, अश्रु-बिन्दुओं का रुकना असम्भव है।"

अपनी काव्य-यात्रा पर निकला कवि भाव सलिला में विरोध नहीं पाता शोषण, शोषित तथा शोषक से सम्बद्ध भाव-लहरियों में डूबकर वह समाज की ऊबड़-खाबड़ धरती को समतल बनाने का इच्छुक है। वह कहता है—

"मीशा पादशा !"
अब सर्दी आने वाली है—जेब तुम्हारी खाली है,
तुम्हारी केवल एक झोंपड़ी है—उसकी कुर्की होगी,
तुम्हारे तथा मेरे पास कुछ नहीं—"मीशा पादशा !"

यह सब कुछ देखकर उसे ऐसा लगता है जैसे भगवान् का कठोर हृदय पसीजता नहीं। अपनी विद्रोह-वाणी को कुछ ऊँचा करके वह कह उठता है—

"हे भगवान् ! आओ, मैं तुमसे संसार की दशा का वर्णन करूँ
जगत को क्या हुआ है वही तुम्हें दिखाऊँगा।"

× × ×

मैं अपने हाथ से नवीन संसार की रचना करूँगा
छोटे-बड़े, अमीर-गरीब का अंतर मिटा दूंगा।"

सन् 1953 के आसपास कश्मीर में राजनीतिक स्थिरता हो जाने पर कवियों की विचारधारा में एक परिवर्तन उपस्थिति हुआ। ओजस्वी तेवरों के स्थान पर अब उनका ध्यान लालित्य चेतना की ओर उन्मुख हुआ। वे काव्य को नई बिम्ब योजनाओं, नई कल्पनाओं तथा उपमा-प्रतीकों से सजाने-संवारने लगे। नादिम की कविता अन्य कवियों जैसे रहमान राही, अमीन कामिल, गुलाम नबी फिराक, गुलाम रसूल संतोष, मुज्जफर आज़िम और चमन लाल चमन के साथ एक मोड़ खाकर प्रयोगवाद के चौराहे पर खड़ी हो गई। नादिम ने माथे के तिल को उपमानों एवं बिम्बों के माध्यम से मूर्त बनाया। जैसे —

लखचि छु लखचुन
ड्यककुय टिकॅ ज़न
ताफ़ प्रज़लवुन
सिंगल दीपचि रानि पद्माने
प्रगाशान ड्यकि म्यूठ छु च्युनमुत
नूर जहाना हूर मिसाल
नतॅ ज़न हिरनन कोलसरस कुन
वनि प्यठ नीमच़ छिपदिथ छाल···।

अर्थात् उसके मस्तक का तिल ऐसा लग रहा है मानो असीम प्रकाश सिमटकर एक ही बिन्दु पर थम गया हो। अथवा फिर सिंहलद्वीप की रूपसी पद्मावती को जैसे अपरिसीम तेज ने मस्तक पर चूम लिया हो। अथवा फिर अप्सराओं की आदर्श नूरजहाँ का वह रूपसी सौंदर्य हो, अथवा फिर उसके केश-वन से एक मृग भागकर नयन-स्रोतों के बीच जम कर आसीन हो गया हो…।

लोकगीतों के आधार पर लिखी गई उनकी कविताएँ अधिक आकर्षक एवं सुन्दर हैं। 'डल की माँझिन का गीत' यथार्थ जीवन का प्रतीत होते हुए मानवतावाद का एक अपूर्व उदाहरण हो। जैसे—

"बाप की तरह उसकी नाक छोटी है,
माँ की तरह उसका चेहरा छोटा है,
डल के कीचड़ में से कमल फूट आया है
आओ, आओ तो।"

कश्मीरी कविता को नवीन स्वरूप-प्रकार देने में नादिम का विशेष योगदान रहा है। नवीन विषयों को लेकर उन्होंने जो चतुर्दशपदियाँ (सोनेट) लिखीं, उनमें लालित्यपूर्ण सामंजस्य की विशेषता उपलब्ध है। चाँद चाँदी की रोटी की तरह चढ़ आया' शीर्षक कविता एक उत्तम चतुर्दशपदी है। देखिए :—

"चांद रोटी की तरह चढ़ आया-थका-थका धुंधला-धुंधला,
मानो किसी मजूरिन को छलकर
किसी ठेकेदार ने दिया
रेजगारी के साथ एक खोटा रुपया

नादिम गजलें लिखने में भी पीछे नहीं रहे हैं। इससे पूर्व महजूर तथा राही ने भी ग़ज़लें लिखने का प्रयास किया था। उनकी गजल का एक तर्कयुक्त आशावाद देखिए—

"वह वहाँ से क्या देदीप्यमान है—
रात का प्याला तो कहीं टूट नहीं गया।"

उन्होंने कश्मीरी कविता को बौद्धिकता तथा तर्कयुक्त आशावाद दिया। नवीन उपमाओं, प्रतीकों तथा बिम्बों के व्यवहार से प्रकट होता है कि वे एक सिद्धहस्त कलाकार हैं।

नादिम एक सफल कवि ही नहीं, वरन् एक सफल नाटककार तथा कहानीकार भी हैं। सन् 1947 के कबाइली आक्रमण ने कश्मीर में नई साहित्य विधाओं के द्वार खोल दिये। इस राष्ट्रीय संचेतना से ओत-प्रोत प्रगतिवादी

प्रवृत्ति से भरे हुए नाटक भी अभिनीति हुए। 'सर्वप्रथम उर्दू में लिखित 'यह कश्मीर है' शीर्षक नाटक खेला गया। परन्तु कश्मीरी नाटक का इतिहास इससे भी पुराना है। यहाँ श्रीनगर में गावकदल के पास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नाटक कंपनी खोली गयी थी। यह कम्पनी पारसी थिएट्रीकल कम्पनी के समान ही व्यावसायिक थी। अपनी अल्पकालीन समयावधि में इसने हरिश्चन्द्र कृष्ण-सुदामा, वीर बभ्रुवाहन आदि उर्दू में लिखे कई नाटक अभिनीत किए। इस नाटक कम्पनी के प्रबंधक सर्वश्री दीनानाथ हण्डू, ताराचन्द तिक्कू, किशनलाल, महेश्वरनाथ दर आदि थे। उनके समय में अभिनीत नाटक अधिकतर ऐतिहासिक एवं पौराणिक थे जिनका मुख्य उद्देश्य शिक्षा और मनोरंजन था। इस कम्पनी ने कश्मीर रंगमंच और नाटक के विकास में एक विशेष भूमिका निभाई। इस कम्पनी के टूट जाने के पश्चात् कवाइली आक्रमण के समय जिन नाटकों का प्रणयन हुआ, वे समाज एवं परिवेष के सन्निकट थे। इस समय के नाटककारों ने समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह समझा। उनमें आततायियों को मुंह तोड़ जवाब देने की क्षमता थी। इसी समय प्रेमनाथ परदेसी का 'शहीद शेरवानी' नाटक भी मंच पर खेला गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'कल्चरल फ्रण्ट' के टूट जाने पर जब 'आल स्टेट कल्चरल कांफ्रेंस' की साहित्यिक संस्थान का निर्माण हुआ तभी कश्मीरी गद्य में समुचित विकास के ध्येय से नादिम आगे आये। उन्होंने कश्मीरी नाट्यशाला सम्बन्धी कई प्रयोग किए। उन्होंने ओपेरा गीत-नाट्य-प्रणाली का आश्रय लेते हुए सन् 1953 में 'बोम्बर-येम्बरजल' का पहली वार मंचन किया। यह प्रगीतात्मक गीत-नाटय अत्यधिक सफल रहा। इसका कथानक बड़ा कलात्मक है जिसके माध्यम से उन्होंने देश को साम्राज्यवादियों के षड्यन्त्रों से सुरक्षित रहने की चेतावनी दी। इसमें असत्य के ऊपर सत्य, अन्याय के ऊपर न्याय तथा सामंतशाही के ऊपर लोकतंत्र की विजय दिखाई गई है। इस ओपेरा में प्रभंजन तथा पतझड़ सामन्तशाही के प्रतीक हैं जो अब अपने अंतिम चरण पर हैं। प्रभंजन और पतझड़ ऐसी शक्तियाँ हैं जो मधुवन में पुष्पित गुलाला तथा टेकबटनी आदि के कोमल एवं सुकुमार पुष्पों जैसे भोले-भोले प्राणियों का जीवन दूभरकर देते हैं। भौंरे (बोम्बर) रूपी सहज-स्वाभाविक प्राणी भी पतझड़ एवं प्रभंजन के इस कटु व्यवहार से शापित-तापित हैं। यह ओपेरा दूसरी बार पूरी रंगमंचीय सज्जा के साथ उस समय खेला गया, जब सन् 1954-55 में रूसी नेता बुलगानिन ओर ख्रुश्चेव आदि कश्मीर आये। अतिथि-गण इस ओपेरा के नवीन प्रस्तुतीकरण से अत्यंत प्रभावित हुए। परिणाम यह निकला कि यह रूसी अनुवाद के साथ रूस में भी अभिनीत हुआ।

कश्मीरी नाटक का जो सूत्र अब हाथ में ले लिया गया था, वह अब दृढ़तर रूप धारण कर रहा था। 1956 में सरकार ने प्रथम बार 'जश्ने कश्मीर' मनाने का आयोजन किया। इस समय एक नाटक प्रतियोगिता हुई और विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रम संपन्न हुए। इसी अवसर पर नादिम का ओपेरा 'हीमाल-नागराय' 'नीकी तॅ बदी' तथा अमीन कामिल का 'हब्बा खातून' आदि नाटक मंच पर अभिनीत हुए। नादिम ने नाटक-साहित्य का जो मार्ग प्रशस्त किया, उस पर आगे चलकर कई मौलिक नाटक लिखे गए। इन मौलिक नाटकों में मानव-चरित्र की विभिन्न दशाओं, कमज़ोरियों, आकांक्षाओं तथा लाचारियों आदि का चित्रण प्रमुख रहा।

कश्मीरी-कहानी को सुव्यवस्थित क्रमबद्ध विकास-पथ पर लाने का श्रेय नादिम को ही जाता है। लगता है कि कश्मीरी कहानी का जीवन-इतिहास अधिक पुराना नहीं है जब कि यहाँ का संस्कृत कथा-साहित्य अधिक समृद्ध था। प्रगतिशील साहित्यकार मण्डली ने कहानी-साहित्य को संवर्द्धन प्रदान किया तथा उसी के परिणामस्वरूप नादिम ने 'जवाबी कार्ड' एवं 'शीन प्यतो-प्यतो' आदि कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों में प्रचार की भावना अधिक है। सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी इनमें विशेष रूप से हुआ है।

कश्मीरी कविता, नाटक एव कहानी की भव्यतम प्रवृत्तियों में नादिम का नाम उल्लेखनीय है। उनकी प्रतिभा बहु आयामी तथा सर्वतोमुखी है। उन जैसे साहित्यकार की महत्ता तथा गुरुता उनके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है। वे सच्चे अर्थों में प्रगतिवादी हैं जो अपनी संपूर्ण शक्ति से धरती की समूची व्यवस्था को बदलकर नया रूप देने के इच्छुक हैं। उनके समस्त व्यक्तित्व तथा कृतित्व की साधना का यही सर्वोपरि लक्ष्य है। ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार का संपूर्ण साहित्य प्रकाश में लाए जाने की आवश्यकता है जो अभी तक पर्याप्त मात्रा में अप्रकाशित है। कश्मीरी साहित्य में समय की शिला पर उसका नाम सदा अमिट रह सकता है जिसके सत्प्रयत्न उसके सम्पूर्ण साहित्य को यथायोग्य ढंग से जन-सामान्य के सम्मुख लाना अपेक्षित है।

□ □ □

'नादिम' की कविता के कुछ मुख्य स्वर

□ डा० निज़ामुद्दीन

दीनानाथ कौल 'नादिम' का व्यक्तित्व ही काव्यमय है। वह प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। उन्होंने कश्मीरी कविता को नया मुहावरा दिया, नयी भावभंगिमा प्रदान की, नये रूप-शिल्प से उसका श्रृंगार किया, नवीन प्रयोगों से उसकी छवि को निखारा-संवारा। उन्होंने देशभक्ति तथा प्रगतिवादी विचार-धारा को अपनी कविता का मुख्य स्वर बनाया। देशप्रेम की उनकी कविताएँ अति लोकप्रिय हुईं। देशानुराग की, स्वतंत्रता की, प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि 'आजाद' और 'महजूर' ने पहले ही यहाँ तैयार कर दी थी। कविवर कश्मीर के उन कवियों में सिरमौर हैं जिन्होंने कविता को हुस्नो-इश्क की दास्तान से मुक्त किया और जीवन की वास्तविकता से, विसंगतियों एवं विषमताओं से उसे आँख चार करना सिखाया और उसे इतनी सामर्थ्य तथा शक्ति प्रदान की जिससे वह शोषण तथा अन्याय के विरोध में अपनी आवाज़ उठा सके। अपने प्रगतिवादी मुहावरे के निकट होने के कारण उन्हें 1970 में 'सोवियत-नेहरू पुरस्कार' भी प्रदान किया गया था। अपने रूप आकार में वह एक 'कामरेड' ही दिखाई पड़ते हैं और वैसे भी उन्होंने साम्राज्यवादी शक्तियों का तीव्र स्वर में विरोध किया; इसे 'षड्यंत्र' 'युद्ध लिप्सा' आदि कविताओं में देखा जा सकया है। उनकी कविता चाहे वह देशानुराग में डूबी हो या प्रगतिवादी स्वर मुखरित करने वाली हो, वह मानवतावादी संवेदना को अपने में लपेटे हुए हैं, उसमें विश्व-बन्धुत्व की भावना गहराती है, मानव मूल्यों का स्खलन प्रस्तुत करती है, मूल्यहीनता तथा विषमताओं-विरूपताओं के अंधेरे को रेखांकित करती है। वह संसार में भाई-चारा स्थापित करने की इच्छा करता है—"म्य दुनिया छु मिलचार किन कुन बनावुन" उनकी कविता में कश्मीर-जीवन-परिवेश भी पग-पग पर चित्रित हुआ मिलता है। एक ओर वह कश्मीरी बालक को 'नई बहार' का, 'नई आशा-आकांक्षाओं' का प्रतीक कहते हैं और दूसरी ओर किसी सुन्दरी के रूपजाल में फँस कर उसके लावण्यवर्धक "तिल" का अद्भुत भाव-लालित्यमय चित्रांकन

करते हैं। कश्मीरी किशोर को गगन-सितारा बनना भाता है, वह भूचालों से खेलना चाहता है, तूफान तथा बिजली उसे भाते हैं, पत्थरों से टकराने का अपार साहस उसमें मौजूद है, काल भी उससे भयाकुलित हो उठता है—

> मे छुम खोश यिवान ज़लज़लन सूत्य गिन्दुन
> तूफानन अन्दर वुज़मलन सूत्य गिन्दुन
> बनित युप नेरुन पलन सूत्य गिन्दुन
> मे कुन वुछित कांपान अजल ख़ूंख्वार
> लोकुट छुस बु काशुर मे नाव नोव बहार

उनकी 'सुबह गाही' में मानव-मूल्य-विहीन समाज के अंधेरे का चित्रण है। 'मकड़ी के जाले' में भी इसी प्रकार के अंधेरे का धूल भरे वातावरण का वर्णन है। 'गर्दोगुबार' भी इसी वातावरण को दर्शाने वाली रचना है। उनकी कविताओं में मूल्यविहीनता की अभिव्यंजना बिम्ब तथा प्रतीकों के माध्यम से वहुत प्रभावशाली बन गई है। व्यवस्था के प्रति भी उनमें भारी आक्रोश देखने को मिला है यह उनकी निडर अभिव्यक्ति का द्योतक है।

उनकी 'नावद-टयठव्यन' (मिश्री-माहुर), 'कोठ्यदरबाज़ प्यठ गर ताम' (मेले से घर तक), 'लक्चि छु लक्चुन' (लक्खी के मुंह पर तिल) आदि कविताएँ अपने रूप-सौन्दर्य में बड़ी बेजोड़, जानदार हैं। लक्चि छु लक्चुन' को उनके रूपवाद की प्रतिनिधि रचना माना जा सकता है। इसकी बिम्ब-योजना चित्ताकर्षक है। माथे पर तिल ऐसा लगता है जैसे आकाश एक विन्दु में सिमट गया हो, अपार तेज ने पद्मिनी का माथे पर चुम्बन लिया हो, केश-वन से एक मृग भागकर नेत्र-स्रोतों में छिप गया हो। उनकी 'अख-शाम' (15 अगस्त 1967) में कुछ बिम्ब तथा व्यक्ति के 'समाज के, देश के घुटते अरमानों पर नजर डालिए :—चारों ओर बच्चे कोलाहल कर रहे हैं लेकिन झकझोर पवन उनकी हंसी उड़ा रही है 'सफेद' हंसते-हंसते लोट पोट हो रहे हैं, 'वेदज़ार' कानाफूसी कर रहे हैं, 'सर्वेरवाँ' उचक कर आकाश छू रहा है, 'चमेली' मुग्ध है, 'चिनार' के पत्ते ठहाका लगा रहे हैं, अंगूर' की बेल थर-थर कांप रही है, 'ब्रिमिज' खिलखिला रहा है, 'अनार' से यौवन फूट रहा है। लेकिन कवि आगे कहता है कि उसने भी बच्चे पाले-पोसे, उन्हें गाकर लोरियाँ सुनाईं, उन्हें ममता दी, वक्ष की गर्मी दी, शबनमी सांसों की शीतलता दी और उनके सुन्दर नाम रखे—

> वनि कडि-कड थविमख नाव म्य रूति,
> छु छु ब्युल थोवनाव अमिस म्य हिशर

यि छु काचुर कोरमस नाव पजर
युस शोम, शोज़र वनि वनि गोरूम
छोत ह्यु वि म्य, स्यज़र बाशिथ गोरूम
अछिदारि वोनुम वतनिच दौलत
सोनिहारि दोपुम पज़ि हुबि मेहनत
वनहारि थोवुम रूत नाव, दिवथ्
यिम म्यानि वछिक अडिफल हसरथ
वोतिलेयि नि ज़ांह पोठेयि नि ज़ांह
यिम कोनि गिंदन, यिम कोनि असान ?
टिकि-टिख, दव-दव, हुति-योतनि करान ?
दय-ज़ानि यिमन लज्य क्याज़ि नज़र
वुहि वुहिरि छि वुनि ह्यबुंगि तिथी
न छि शाह-खस वस, न छि कुनि वोस द्रोस
अन्द पोखि छु मगर चुर्य-ग्युश चुर्य-ग्युश ।

पुत्रों में नीली आँखों वाले की 'समानता' भूरे बालों वाले 'सत्य' 'साँवले रंग वाले को 'शुद्धता' 'गोरे रंग वाले को 'सादगी' 'नाम दिए। पुत्रियों में गुड़िया जैसी को 'देशधन' 'सुनहली पुत्री को 'भरपूर परिश्रम' और 'वनमैन' को 'सभ्यता' का नाम दिया। उसके मानस के यह अरमान अधखिले रहे, न पनपे, न ताज़ा हुए, न हँसे, न खेले, न जाने इन्हें किसकी नज़र लग गई; बीस वर्षों के पश्चात् भी गुमसुम हैं, न साँस चलती है, न यह कोलाहल, भागदौड़ करते हैं, जबकि आस-पास का सकल वातावरण बालकों की किलकारियों से भरा हुआ है।

□□□

नादिमो नादिमः असत्यं अलीकं
नादिमो आदिमः आदिमो नादिमः।

—मोतीलाल 'पुष्कर'

कश्मीरी रंगमंच को नादिम की देन

□ प्रो० चमनलाल सप्रू

श्री दीनानाथ नादिम आधुनिकी-कश्मीरी साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। उनको विश्वख्याति कवि के रूप में मिली है, लेकिन वे कश्मीरी के पहले कथा-लेखक और संगीत-रूपक लेखक भी हैं। उन्होंने नाटक तो नहीं लिखे हैं अपितु नौ संगीत रूपक लिखे हैं जिनमें से अधिकांश का रंगमंच पर सफल अभिनय भी हुआ है और कई एक रेडियो से प्रसारित भी हुए हैं।

श्री नादिम का सबसे पहला संगीत रूपक "यि ज़मीन तसंज़ई येम्य कमाव खीत्य" (यह धरती खेतिहर की है), सन् 1949 में लिखा गया है। कश्मीर में 'अवामी राज' के आगमन के उपरान्त शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह के नेतृत्व में सरकार ने जो महत्त्वपूर्ण फैसला लिया—वह था खेती का मालिक किसान को बनाना। उपर्युक्त लोक-नाट्य संगीत रूपक शैली में 'भूमि का मालिक किसान' आन्दोलन पर आधारित है। इसमें संगीत डुग्गर प्रदेश के लोक-संगीत पर आधारित था। नादिम का उद्देश्य जम्मू और कश्मीर की अखंडता को दर्शाते हुए उपर्युक्त आन्दोलन को वास्तविक रूप में जन-आन्दोलन के रूप में प्रदर्शित करना था। यह संगीत रूपक कश्मीर घाटी में कल्चरल फ्रंट नामक संस्था की ओर से सर्वत्र प्रदर्शित हुआ था।

उसके उपरान्त "**बावन वोननम**" (कहा बयार ने) नामक उनकी कविता को संगीत-नाट्य के रूप में मराठी कलाकार रोहिणी भाटे के सहयोग से चीन स्थित शंघाई और नानकिंग में प्रस्तुत किया गया। इसी कविता को नृत्य-अभिनय द्वारा 1951 में श्री मोतीलाल क्योमू ने मंच पर प्रस्तुत किया।

सन् 1950 में नादिम ने मदारी के रूप में 'नया कश्मीर का जादू' नामक रूपक जनता के सामने प्रस्तुत किया। इसमें नादिम ने स्वयं मदारी का अभिनय किया।

नादिम के मन में एक तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि कश्मीरी रंगमंच के लिये भाट एवं अन्य लोक कलाकारों द्वारा प्रस्तुत लोक-कथाओं को नाटक के रूप में अभिनीत किया जाये। वह लोक परम्परा का संगीत-रूपक के द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत करने के इच्छुक थे। इसमें इन्होंने जो प्रयोग किये उसमें इनको अद्भुत सफलता मिली। वह हिन्दी या पारसी रंगमंच (जो 1947 तक कश्मीर में अपनी प्रमुख भूमिका निभा चुका था) का अन्धानुकरण नहीं करना चाहते थे।

चीन से लौटकर उन्होंने पारम्परिक साधन को अपनाकर-चीनी क्लासीकी ओपेरा के ढंग पर 'बुम्बुर-यम्बरजल' को प्रस्तुत किया। यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास था। इसका आधार प्रसिद्ध कश्मीरी दन्त-कथा 'बुम्बुर-यम्बरजल' (भौंरा और नर्गिस) था जिनके बारे में कश्मीरी में किंवदन्ती प्रचलित है कि उनका कभी मिलन नहीं हुआ था। यह एक प्रकार से कश्मीर में ही नहीं अपितु उत्तर भारत में अपने ढंग का पहला 'आपेरा' था जिसका अभिनय 1953 में हुआ था। इस नाटक में संगीत की धुनें विशुद्ध कश्मीरी थी और पहली बार इसी रूपक में एक महिला ने रंगमंच पर अभिनय करके कश्मीरी रंगमंच के इतिहास में क्रान्ति ला दी थी।

यह संगीत नाटक उज़बेक और रूसी भाषाओं में अनेक बार अभिनीत हो चुका है और अब तक इन भाषाओं से सोवियत संघ में इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। कश्मीर और देश के अन्य भागों में भी अब तक इस संगीत-नाटक का दर्जनों बार सफल अभिनय हुआ है।

संक्षेप में इस रूपक का कथानक इस प्रकार से है :—

नर्गिस वसन्तागमन के साथ ही खिलती है अपने प्रेमी भँवरे को ढूंढती है किन्तु उसे नहीं पाती। वसन्तकालीन पुष्पविशेष आकर उसे सान्त्वना देते हैं, किन्तु उनकी सान्त्वना का नर्गिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह उसे बताते हैं कि तुम्हारा मिलन अवश्य होगा। शीघ्र ही झंझावात घूमते-घूमते नर्गिस को ढूंढ लेता है और उसे पकड़ना चाहता है। लेकिन ऐसा किस प्रकार हो सकता है। उसका साथ 'हरूद' (पतझड़) देता है। दोनों उसे अपनाना चाहते हैं। किन्तु नर्गिस से गुंजरित होने वाली ध्वनि 'प्रेम' प्रकट होकर उनके इरादों को पूरा नहीं होने देती।

भँवरा आता है किन्तु नर्गिस को नहीं पाता। वह बेहोश हो जाता है। पुष्प उसके चारों ओर आकर उसे सान्त्वना देते हैं। वह सभी संगठित होकर युक्ति से 'पतझड़' और 'झंझावात' को बुलाकर उपवन की लताओं से बाँध लेते

हैं। वे सभी 'प्रेम' और 'बसन्त' के शत्रु 'पतझड़' और झंझावात' को विनष्ट करके बार-बार 'बसन्त' को लाने के लिए सतत संघर्ष-रत रहने का संकल्प करते हैं।

हीमाल नागराय

इसके बाद एक और सफल ओपेरा लोक-संगीत के सहारे प्रस्तुत किया गया। इसमें छाया नाटक, रूपक और नाटक तीनों का सम्मिश्रण था। इसका कथानक लगभग 'बुंम्बुर-यम्बरज़ाल' जैसा ही था किन्तु इसमें थोड़ा अन्तर यह था कि इस संगीत नाटक का नायक 'नागराज' पाताल के नागों द्वारा पकड़ा जाता है जो बुराई के प्रतीक है। 'हीमाल' (नायिका) के प्रेम से बुराई का यंत्र टूटकर हीमाल और नागराय का पुनर्मिलन हो जाता है। यह पहला कश्मीरी नाटक था जिसमें पार्श्व-गायन (Play-back singing) का प्रयोग हुआ था। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार का प्रयोग छाया में किया गया था। इस की पद्यबद्ध कमेंट्री श्री नूर मुहम्मद रोशन ने की थी और शेष गीत और कथा श्री नादिम ने ही लिखी थी। 1956 में कई बार इसे रंगमंच पर अभिनीत किया गया।

नीकी बदी (नेकी और बदी) यह संगीत-नाटिका 'बुम्बुर-यम्बरज़ल' की भान्ति कश्मीर की ही पृष्ठभूमि पर खेली गई। इसमें कश्मीर के पुष्पों के बदले पक्षियों और पशुओं को पात्र बनाया गया है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है सारा संगीत-रूपक भलाई और बुराई में होने वाले संघर्ष पर आधारित है। सारा कथा-नक दो लड़कों के गिर्द घूमता है जो जंगलों में भटक गये होते हैं किन्तु पशु-पक्षियों द्वारा बचाये जाते हैं। मानव-पशु के इस विचित्र मिलन में कुछ पुष्प भी उनका सहारा देते हैं।

इस नाटक के उत्तरार्ध में प्राचीन साँस्कृतिक विश्व नेताओं एवं महापुरुषों की प्रदर्शनी की जाती है इसमें कश्मीर की लल्लद्यद और परमानन्द आदि को भी दिखाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण मानवता को कश्मीर और भारत सहित संगठित किया हुआ दिखाया जाता है।

इस ओपेरा को अनेफ बार भारी जन-समुदाय के सामने हिन्दू हाई स्कूल श्रीनगर के छात्रों ने 1956 में प्रदर्शित किया। इस संगीत-नाटिका के बारे में एक चेकोस्लाव बाल-रंगमंच विशेषज्ञ (जिसने इसे देखा था) ने कहा था कि कश्मीर का बाल रंगमंच और संगीत-नाटिका की शैली दोनों यूरोप के बाल-रंगमंच और संगीत-नाटिका शैली से कई गुणा उत्तम हैं।

पक्षियों को मुख्य पात्र और जंगल को पृष्ठभूमि के रूप में दूसरी बार नादिम ने प्रस्तुत किया 'शिहिल्य कुल' (वृक्ष छायादार) नामक ओपेरा में। इसका सर्वप्रथम अभिनय 1968 में श्रीनगर में हुई राष्ट्रीय एकता समिति के अधिवेशन के अवसर पर किया गया।

नेकी-बदी से थोड़ा भिन्न इसका कथानक है। कथानक एक विशालकाय चिनार वृक्ष के गिर्द घूमता है जो छोटे-बड़े अनेक और भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षियों का आवास-स्थल है। छोटे पक्षी पहले से ही यह अनुभव करते हैं कि बड़े पक्षी सब प्रकार की उत्तम चीजें पहले ही अपने लिए रखते हैं। छोटे पक्षियों को अपनी गतिविधियाँ निचली टहनियों तक सीमित रखनी पड़ती थीं।

आढ्य और अनाढ्य का यह अन्तर वहाँ स्पष्ट दिखाई देता है। 'कोयल' और 'पोशनूल' आपस में इस स्थिति पर विचार-विमर्श करते हैं। वह कुछ सहमे हुए होते हैं। यद्यपि गुलाब (क्रांति के तत्त्व) अपनी महक चारों ओर फैलाये हुए होते हैं फिर भी बाज, क्रौंच और गिद्ध जैसे पक्षी अभी भी मनमानी किये हुए होते हैं। चील जैसे समाज विरोधी तत्त्व आगे बढ़ने में प्रयत्नशील होते हैं। चील पक्षियों को रंग, जाति और आहार के आधार पर विभाजित करना चाहती है। लेकिन छोटे-छोटे पक्षी कोयल, पोशनूल, फाख्ता आदि और यहाँ तक कि कौए भी उनके साथ होकर समाज-विरोधी पक्षियों के प्रति विद्रोह में एक हो जाते हैं। गीत गाने वाले पक्षियों का संगठित अभियान अन्ततः रंग और जाति आदि के आधार पर विभाजित करने वाले खूंखार पक्षियों को भी परास्त कर लेता है।

यह संगीत-नाटक उतनी सादगी और गेयात्मकता के साथ रचा नहीं गया है जितनी कि पूर्वरचित संगीत-नाटक, किन्तु इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण सन्देश को प्रस्तुत करने की क्षमता है अर्थात् इसमें वर्तमान युग में व्याप्त असमता के प्रति एक महत्वपूर्ण संदेश निहित है।

इस ओपेरा का अभिनय अनेक बार गवर्नमेंट कालिज फॉर वीमन, अमीराकदल द्वारा अनेक बार देश के गण्यमान्य व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत किया गया।

इसके पश्चात् नादिम साहिब ने एक ऐसा संगीत-रूपक लिखा जो पूर्व नाटकों की परम्परा से थोड़ा भिन्न है। इसे रेडियो के लिये लिखा गया था और बाद में रंगमंच के लिए इसका एक संस्करण प्रस्तुत किया गया। इस नाटिका का सम्बन्ध पंडित जवाहरलाल नेहरू के भावात्मक एवं बौद्धिक जीवन से है। 'सफर-त-शेहजार' (सफर और ठंडक) नामक इस नाटिका में कवि चिन्तक

(नेहरू) की एकान्त किन्तु भीड़-भाड़ वाली यात्रा को संघर्ष और स्वतन्त्रता की घाटी में से गुजरते हुए दिखाया गया है। यह उस महापुरुष की यात्रा दिखाई गयी है जो जनता के लिए स्वतन्त्रता-संग्राम से भी अधिक प्रिय था। अन्ततः यह सफर उसे महान् नदी गंगा के तट पर पहुँचा देता है जिसे वह बेहद प्यार करता था और जो नदी सम्पन्न भारतीय साँस्कृतिक परम्परा का प्रतीक भी है। 1969-70 में श्री नेहरू के जन्म दिन पर इस नाटिका का अभिनय बिस्कू मेमोरियल स्कूल ने प्रस्तुत किया था।

उपर्युक्त शैली में श्री नादिम का एक और सफल ओपेरा 'व्यथ' (वितस्ता) है। यद्यपि इसे भी मूलतः रेडियो के लिए लिखा गया किन्तु इसका मिस मैलिनसन की छात्राओं ने कई बार बड़ा सफल अभिनय किया। इस नाटिका का कथानक वितस्ता नदी के उद्गम के साथ चलता है। वितस्ता कश्मीर घाटी की प्राण है और हमारी साँस्कृतिक परम्परा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। इसमें प्रमुख पात्र निम्नलिखित हैं :—

नीलनाग, वासुकि, कार्कोट, कामदेव, शिनाबो (वितस्ता की सहेली) महापद्म (वुल्लर), 'फुल्लय', सोन्त (बसन्त) शिशुर (शीत) सिन्धु, विशव।

अन्तिम संगीत-नाटिका 'मदनवार-त-जुवलमाल' नाम से है जो रेडियो के लिए लिखी गई थी। इस नाटिका में भी प्रेम की विजय दर्शायी गई है। इसका आधार भी एक कश्मीरी दन्त-कथा ही है। इसमें मदनवार (नायक) जुवलमाल (नायिका) काल, शीन पी-पी, राहगीर सुन्दरमाल, हीमाल आदि पात्र हैं।

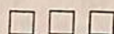
श्री नादिम ने रेड़ियो के लिये कालिदास के मेघदूत को भी संगीत-रूपक के रूप में लिखने में युगप्रवर्तक सिद्ध हुए हैं। इनके बाद कई स्थानीय लेखकों ने संगीत रूपक लिखे हैं।

अमीन कामिल ने 'राव-रूपी' लिखा है। कामिल का कथन है कि राव-रूपी कश्मीरी में ओपेरा का ही वर्णन है। प्रसिद्ध कश्मीरी लोक-कथा 'सोन्य किसर' को संगीत रूपक के रूप में मुज्जफर आज़िम ने प्रस्तुत किया है। गुलाम रसूल सन्तोष ने 'गुलरेज़' तथा 'आजादी' नामक संगीत रूपक लिखे हैं।

श्री नादिम और उनके परवर्ती संगीत नाटक लिखने वालों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि 'सोन्य किसर' और 'गुलरेज' को छोड़कर शेष सभी में कथा-तत्त्व का अभाव है जबकि नादिम में कथा-तत्त्व मुख्य है।

सारांश यह कि नादिम के कश्मीरी संगीत-रूपक विश्व-साहित्य में एक प्रमुख स्थान रखते हैं और इनमें कवि नादिम का कलाकौशल और निखर उठा है और उनकी नवनवोन्मेशशालिनी प्रतिभा सर्वोपरि है।

['कोशुर समाचार' दिल्ली के रंगमंच विशेषाँक 1973 से साभार]



दीनानाथ नादिम का वंशवृक्ष

गोत्र———दत्तात्रेय

पं० राजकौल
|
पं० लसकौल—>धर्मपत्नी श्रीमती राजरानी
|
पं० शंकर कौल—>धर्मपत्नी श्रीमती सुखमाली
(देहान्त 1922 ई०) (देहान्त 1944 ई०)
|
पं० दीनानाथ कौल "नादिम" पत्नी श्रीमती पद्मिनी (धनवती)
श्रीमती चान्दा जी अल्पायु में विवाह एवं मृत्यु)

पं० दीनानाथ कौल "नादिम" की संतान:
सौ०सरोजिनी कौल
सौ०सुभाषिणी दर
श्री अहिंसा कौल
श्री शांतिवीर कौल
कु० पंचशील

नादिम साहिब के श्वसुर एवं सास का नाम क्रमशः श्रीयुत श्रीकंठ कौल तथा श्रीमती पोशिकुंज था।

कश्मीरी साहित्य और नादिम

□ प्रो० चन्द्र मोहन कौल

कश्मीरी कविता के क्षेत्र में अनेक महान प्रतिभाएँ हो गुज़री हैं। लल्लेश्वरी ने सबसे पहले कश्मीरी कविता के नव-पल्लवित पौदे की सिंचाई की। उस की कविता यद्यपि पुराने साँचों में ही ढली है फिर भी उसके 'वाख' कोई भी कश्मीरी भूल नहीं सकता। उस की कविता अध्यात्म तथा तस्सुवुफ के विषयों पर ही केन्द्रित रही। लल की कविता में प्रेम तथा एकता का संदेश मिलता है। 'शिव हर स्थान में विद्यमान है, हिन्दू तथा मुसलमान को पृथक-पृथक न जान।' हब्बा खातून तथा अरनिमाल ने अपनी कविता में व्यक्तिगत और सामाजिक दुखों का सरस चित्रण किया। उनकी कविता आडम्बरहीन, प्यारी तथा प्रेम की कोमल अनुभूतियों से परिपूर्ण है। परमानंद तथा शम्स फकीर दोनों ही आध्यात्मिकता के जटिल क्षेत्र तक ही सीमित रहे। पर इनके विचार स्वस्थ हैं। महजूर ने कश्मीरी कविता को नई उड़ान, नये रूप, नये रोमान्टिक विचार तथा नई उपमाएँ दीं। महजूर एक महान कवि था जिसने कश्मीरी कविता के कलेवर को नवीन जीवन से अनुप्राणित किया।

आज़ाद कश्मीरी कविता का पहला प्रगतिवादी तथा इन्कलाबी कवि था। उसकी शायरी नए ढंग की है। उसमें नई आत्मा का संचार है—नई जान है। 'नादिम', 'आजाद' की परम्परा को एक नई मंज़िल तक लाया है। 'नादिम' कश्मीरी कविता की परम्परा को नए सांचे, नए रूपक तथा उपमाएँ देकर नए मार्ग तथा मोड़ पर ले आया है। उसकी कविता के विषय रियावती शायरी से सर्वथा भिन्न हैं। उसकी शैली सर्वथा नवीन ढंग की है। उसने अपने लिए अभिव्यक्ति के नवीन रूप ढूंढ निकाले। उसकी कविताओं के स्वरूप-प्रकार नवीन हैं। उसकी तान नई है—विचार नये हैं। 'नादिम' 'महजूर' की भाँति इश्क व मुहब्बत के गीतों की दुनिया में सहारा लेनें वाला कवि नहीं। वह

मनुष्य का कवि है—उसके दुख-दर्द हर्षोल्लास, और नित्य नई उभरती आशाओं के गीत गाने वाला कवि है। उसकी कविता में मिठास है तो घन-गरज भी। जीवन की यथार्थता के चित्र आंकने में 'नादिम' की मौलिकता बड़ी प्रखर है। 'नादिम' पहला कवि है जिसने कश्मीरी में मुक्त छंद का प्रयोग किया और सॉनेट लिखे। उसने ग़ज़ल को भी कुछ नए ही स्वर दिए हैं।

हर महान कवि की तरह 'नादिम' अपने देश के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से प्रभावित हुआ है। जब 1947 में कबाइली दानवों ने हमारे सुन्दर देश पर आक्रमण किया तो 'नादिम' अपनी कविता रूपी शस्त्र से शत्रु का सामना करने के निमित्त तत्पर था। 'नादिम' की इस काल की कविताओं में तूफान की सी घन-गरज विद्यमान है। उन में उन आदर्शों की ओर संकेत मिलता है जिन की प्राप्ति के लिए हमारे देश में देश-भक्ति की लहर उद्भावित हुई थी। इस काल में कश्मीरी जनता अपने देश की सामंतवादी व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए तय्यार हो उठी थी। कवि ने समय की नाड़ी को पहचाना। वह अपनी कविता के साधन से जनता के सन्मुख नवीन आदर्शों का एक विशाल-काय प्रासाद रचता है। लिखता है—

"मैंने एक नवीन संसार का निर्माण करना है—
नया मानव, नई भूमि, नया गगन
नयी बहार, नया पतझड़, नया ग्रीष्म,
नया ज़माना—मेरा यौवन ताज़ा है।"

'नादिम' अपनी कविताओं में उस नवीन जगत के स्वप्न देखता है जिसकी एक धीमी सी रूपरेखा जन-साधारण के मस्तिष्क में विद्यमान थी। वह संसार को नए साँचे में ढालने की कामना रखता है। नया-कश्मीर की कल्पना से वह दूर क्षितिज तक उड़ान भरने के लिए अपने पंख फड़फड़ाता है।

दुश्मन का सामना हुआ। कश्मीर की समस्या खूब उलझती है। जंग के काले बादल हमारे निशातों, शालामारों, तथा लालाज़ारों पर मँडराने लगे। साम्राज्यवादियों की शह पर कश्मीर की समस्या को सुलझाने की अपेक्षा खूब उलझाया गया। 'नादिम' उस उलझन की तह तक पहुँच कर 'शाँति-कोयल' की कविता में लिखता है—

आंचल में धन और अशरफियां लेकर,
फिरंगी बाज़ीगर अब भी फिर रहे हैं,
सोने की हथकड़ियाँ आँचल में छुपाए हमें धोखा देने आए हैं।

यह कविता अत्यन्त सुन्दर है। कवि ने कलात्मक ढंग से अपने विचारों का प्रकटीकरण किया है। इसमें माधुर्य है सुन्दर उपमाएं हैं। इस कविता में केवल भावुकता नहीं, सशक्त विचार भी हैं।

मुझे कल की आशा है 'नादिम' की उत्कृष्टतम कविता है। इस कविता के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में उस स्त्री का जीवन है जो मां बनने वाली है। दूसरे भाग में प्रियतमा के प्रियतम से मिलन की आशा का वर्णन है। तीसरे भाग में उस स्त्री का वर्णन है जो अपने पति की बाट निहार रही है। यह कविता 'नादिम' की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में से एक है। इसमें कला का निखार है—भावों की सुकुमार अभिव्यक्ति तथा अनुभूतियों की गहनता है। कवि लिखता है कि :—

"मेरे पुत्रों का पिता आएगा,
गण्डी में नवीन पुष्प तथा गुलज़ार होंगे,
मेरे लिए छींट, बेटी के लिए अलंकार होंगे,
'हबीब' की खुतन के लिए रुपये होंगे।
"कल उसे मिलना है,
जब वह (पति) मेरी मिन्नतें मांगेगा, उसके नयनों की ओर झाँकूगी,
जब आलिंगन होगा, अश्रु-बिन्दुओं का रुकना असम्भव है।"

'नादिम' आने वाली सुबह का कवि है। वह इस ऊबड़-खाबड़ धरती को समतल बनाने का इच्छुक है। वह अपनी दुनिया में भूख, बीमारी तथा असमानता के हृदय-विदारक दृश्य देखता है। काफी पीड़ित होकर वह 'आजाद' के 'इब्लीस' की भाँति भगवान से विद्रोह करता है। लिखता है—

"हे भगवान ! आओ, मैं तुम से संसार की दशा का वर्णन करूँ
जगत को क्या हुआ है, वही तुम्हें दिखाऊँगा
....
मैं हाथ से नवीन संसार की रचना करूँगा।
छोटे-बड़े, अमीर-गरीब का अंतर मिटा दूंगा।"

'नादिम ने कश्मीर की उलझी हुई समस्या से प्रेरित होकर बहुत-सी कविताएँ लिखीं। इन कविताओं से कवि को शांति-भक्त तथा देशभक्त के रूप को देखा जा सकता है। इन कविताओं से कवि ने कश्मीरी कविता का संबंध अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से जोड़ दिया। अतः 'नादिम' ने कश्मीरी कविता के कैनवास को काफी विस्तृत किया। पर ऐसी बहुत-सी कविताओं में एक अवगुण स्पष्ट झलकता है—वह है कोरी राजनीति। इस काल की पर्याप्त कविताओं में विषय तथा कला के सामंजस्य का अभाव है। कल्पना की उड़ान सीमित है तथा वह स्थूल है। 'गर्म-गर्म लाल-लाल यह मेरा खून, जैसी पंक्तियाँ नारेबाजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

कवि की हैसियत से 'नादिम' सजग हैं। 'आजाद' की भाँति उसे कवि के नाते अपने सामाजिक 'रोल' का काफी एहसास है। वह समाज के प्रत्येक प्रकार के आतंक को दूर करना चाहता है।

वह नवीन समाज की रचना चाहता है। 'नादिम' सभ्यता, संगीत, माताओं की लोरी, किसान, यौवन मस्त युवतियों की प्रेम-भरी कहानियों का रक्षक है। 'नादिम' ने कश्मीरी कविता को बौद्धिक-निष्ठा तथा तर्कयुक्त-आशावाद दिया।

"बहार के मुख पर क्या कोई ताला लगा सकता है ?"

'नादिम' पर कला-पक्ष को गौण समझने का दोषारोपण किया जाता है। वास्तव में कुछ ऐसी कविताएँ हैं जिनमें कवि ने कला-पक्ष को गौण समझ कर भाव-पक्ष पर अधिक बल दिया है। पर 'हमारा वतन' तथा 'मुझे कल की आशा है' आदि कविताएँ इस समीक्षा को पूर्ण नहीं ठहराती। 'हमारा वतन' कलात्मकता की पराकाष्ठा है। नई उपमाओं तथा रूपकों की गोद में पली यह कविता कवि को एक सिद्धहस्त कलाकार प्रणाणित करती है—

'हमारा देश पुष्प की तरह है···हमारा देश गुलजार है···हमारा देश सुन्दर गाँव की तरह है···डल के किनारे शाम की तरह।'

'नादिम' कला-पक्ष को गौण नहीं समझता, पर जहाँ कोरी राजनीति के विषय आ जाते हैं, वहाँ कवि कला-पक्ष को भली-भाँति संभाल नहीं सकता। कवि शब्द-सौन्दर्य से घने-जंगलों, सुन्दर झीलों, अडिग पहाड़ों, कोमल अनुभूतियों के सुन्दर चित्र कहीं-कहीं आंकता है। जीवन की मिठास, तलखी, तथा गहनतम संवेदनाओं में वह एक चित्रकार की भाँति गहरे रंग भरता है।

'नादिम' पहला कलाकार है जिसने कश्मीरी कविता को नवीन स्वरूप प्रकार दिए, नए विषय दिए तथा इनमें एक लालित्यपूर्ण सामंजस्य स्थापित किया। कवि ने कश्मीरी कविता को सॉनेट के स्वरूप प्रकार से परिचित किया। 'चाँद रोटी की तरह चढ़ आया' नादिम का एक उत्तम सॉनेट है। इसमें उपमाएं नवीन ढंग की हैं तथा यह भाव-प्रधान है। 'नादिम' की उपमाएँ रिवायती ढंग की नहीं। वह प्रतिदिन के जीवन सी वास्तविकताओं से प्रभावित होकर नवीन तथा आश्चर्यजनक रूपक तथा उपमाएँ प्रस्तुत करता है। लिखता है—

चाँद रोटी की तरह चढ़ आया, थका-थका, धुंधला-धुंधला,
मानों किसी मजूरिन को छलकर
किसी ठेकेदार ने दिया
रेजगारी के साथ एक खोटा रुपया।

'नादिम' ने कुछ गज़लें भी लिखीं हैं। 'महजूर' ने कश्मीरी गज़ल को परम्परा के पेंकिल गड्ढे से निकाल एक नवीन आत्मा से अनुप्राणित किया। 'राही' के हाथों गज़ल परवान चढ़ी। 'राही' ने गज़ल का तादात्म्य जीवन की वास्तविकताओं से स्थापित किया। 'नादिम' की गज़ले 'राही' की गज़लों के मुकाबिले में उच्चकोटि की नहीं हैं। जीवन की गहरी अनुभूतियों का कलात्मक चित्रण जिस ढंग से 'राही' की गज़लों में हुआ है उस ढंग से 'नादिम' की गज़लों में नहीं हुआ है। 'नादिम' की हाल ही में लिखी हुई गज़ल उसके तर्कयुक्त आशावाद को खूब प्रमाणित करती है। लिखता है—

"वह वहाँ से क्या देदीप्यमान है—
रात का प्याला तो कहीं टूट नहीं गया ?"

'नादिम' ने लोक-गीतों के ढंग पर भी कुछ कविताएँ लिखी है। 'डल की माँझिन का गीत' काफी सुन्दर तथा आकर्षक है। यह कविता डल की माँझिन के यथार्थ-जीवन का प्रतीक बन गई है। इसमें मानववाद की भावनाओं की प्रधानता है। देखिए—

"बाप की तरह उसकी नाक छोटी है,
माँ की तरह उसका चेहरा छोटा है।
डल के कीचड़ में से कमल फूट आया है—आओ आओ तो।"

'नादिम' ने पहली बार कश्मीरी कविता को मज़दूरों के श्रम-गीतों से परिचित किया। इनमें कवि ने हमारे ठेला धकेलने वाले मज़दूरों की वास्तविक जिन्दगी का चित्रण किया है। इन गीतों में गीतात्मकता है, सुन्दरता है। ये जीवन के माधुर्य तथा तलखी से भरे हैं।

मीशा पादशा।
अब सर्दी आने वाली है—जेब तुम्हारी खाली है,
तुम्हारी केवल एक झोंपड़ी है—उसकी कुर्की होगी,
तुम्हारे तथा मेरे पास कुछ नहीं—मीशा पादशा।

'नादिम' ने पहली बार कश्मीरी भाषा में गीत-नाट्य लिखे। 'बबुर-यम्बरजल' 'नादिम' का लिखा पहला गीत-नाट्य है। इस में अपने देश को साम्राज्यवादियों के षडयन्त्रों से सुरक्षित रखने का कथानक बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस संगीत रूपक के गीतों में 'नादिम' की महान काव्य-शक्ति का प्रमाण मिलता है। 'हीमाल-नागराय' 'नादिम' तथा 'रोशन' का लिखा हुआ है। इसमें भी 'नादिम' द्वारा लिखित गीत उत्तम तथा प्रतीकत्व से भरे हैं। पर कवि की काव्य शक्ति, यहाँ उतनी उभरी नहीं है जितनी 'बुबुर यम्बरज़ल में उभरी है।

'नादिम' जब भी प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करता है तो साधारण लोगों के जीवन के साथ उसका तादात्म्य स्थापित करता है। वह साधारण जनता के जीवन की कसक, मिठास, और आने वाली सुबह की आशा अपनी कविताओं में समा देता है। वह कभी भी आने वाले नवीन जीवन के मधुमास का आँचल नहीं छोड़ता। वह शेली की तरह चीखता है—

"बहार के मुंह पर ताला कौन लगा सकता है?"



"कश्मीर की नई आवाज—'नादिम' आधुनिक कश्मीरी कविता के मेरुदण्ड हैं। नादिम की कवि दृष्टि व्यापक जन-जागरण में विश्वास करती है, विश्व-मैत्री में उसकी अडिग आस्था है, मानवतावाद उसका अटूट सम्बल है।··· नादिम ने देशभक्ति के साथ-साथ प्रयोगवादी कविताएं लिखनी शुरू की हैं। इन्होंने कश्मीरी कविता में नये जीवन मूल्यों, प्रयोगों, प्रतिमानों, छंदों आदि का समावेश कर कश्मीरी काव्य-कला को एक नया मोड़ दे दिया। मोड़ देते समय नादिर ने परम्पराओं का नितान्त खण्डन नहीं किया और यही उनकी बड़ी भारी विशेषता है। कश्मीरी कविता में मुक्तछन्द का समावेश भी इन्हीं की देन है। प्रयोगवादी काव्य शैली में लिखी नादिम की 'लखचुन' (तिल) कविता कश्मीरी काव्य-भण्डार की अमूल्य सम्पत्ति बन चुकी है।"

—डॉ० शिबन कृष्ण रैणा
साप्ताहिक "हिमालय" मुरादाबाद
से साभार

दीनानाथ नादिम—शान और रुतबे का शायर

□ स्व० शमीम अहमद 'शमीम'

मशहूर अंग्रेज लेखक जे० बी० प्रीस्टले ने हाल ही में 75वें जन्मदिवस पर कहा कि अब हमारे गिर्द-ओ-पेश अज़मत और आनबान रखने वाली शख्सियात खाल-खाल ही नज़र आती हैं। कश्मीरी अदब के मुख्तसर से निगारखाने पर नज़र दौड़ाते हुए इस हक़ीकत का बड़ी हद तक अन्दाजा होता है। लेकिन यही बात क्या कम है कि एक ऐसी-शख्सियत फौरन जबीन नियाज़ को खम करने पर मजबूर होती है, जो हर पैमाने और हर लिहाज़ से आन-बान की हामिल और अज़मत के हमसाया है। दीनानाथ नादिम मुआसरि-कश्मीरी का ही सबसे बड़ा शायर नहीं बल्कि कश्मीरी ज़बान की तारीख के सब से क़दावर अदीबों में बड़ी शान और रुतबे का शायर है।

नादिम शायद सारे कश्मीरी शायरों में वाहिद शख्सियत है, जिसकी जिस्मानी शबाहत आम पैमानों से बढ़कर है और जिसको देखकर ऐसा महसूस होता है कि हम किसी बड़े एहराम के सामने गुज़र रहे हैं। लम्बे क़द और चकले हाड़ का नादिम जो गर्दन तक बाल रखता है, अपनी ज़ाहिरी शक्ल-ओ-सूरत में बड़ा मरऊब कुन है। कभी वह चीन के माऊज़े तुंग के फैशन का कोट पहनता था, क्योंकि वह चीन जाने के बाद उसका बड़ा गिरवीदा हो गया था। उसके शायराना ज़ेहन को माऊ की रूमानी शख्सियत ने मुतासर किया था। लेकिन अब चीन हमारा दुश्मन है। और शायर की-सी ग़ैर मुस्तकल मिज़ाजी के तहीं नादिम ने इस कोट को भी उतार फेंका है। इस कोट को तो तरक करने की कहानी बड़ी अजीब है। क्योंकि इसके साथ दीनानाथ नादिम की जेहनी-दुनिया के कुछ पुर इसरार ज्वार भाटे भी वाबस्ता हैं। कभी वह इश्तराकी था, लेकिन एक आशिक के ज़ज़बात वालिहाना और सर मस्ती-ए मजनूनाना के

साथ वह आज भी इश्तराकी है, लेकिन एक मसलिहत अंदेश की होश्यारी और जमाने-साज़ी के साथ पहले यह मंजूर उसका माशोक़ था। अब यह उसके हरम सरा का पहरेदार है और वह खुमार उतर जाने के बाद अब एक जाबिराना तक़दीर के साथ समझौते की कोशिश कर रहा है। नादिम की जिन्दगी—इब्तदाई जिन्दगी के मुतलिक़ आईना साज़ की मालूमात, बहुत कम हैं, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि इसकी जवानी बड़ी रंगीन गुजरी है गालिब ने इसे फसक व मजूर का ज़माना कहा था। लेकिन नादिम अब भी उस जमाने को याद करके नादिम नहीं होता। बाद में हिन्दू हाई स्कूल उसका महबूब बन गया और उसने उसके साथ निकाह पढ़ लिया। उसकी यह रफीक़ा-हयात उसकी बड़ी वफादार साबित हुई है। कभी-कभी इश्तराकियत या सरकारी मुलाज़िमत इशवा तरज तवाइफें उसको अपनी जुल्फों का असीर करती है। वह एक हवसकार-मर्द की तरह हिन्दू हाई स्कूल को भुला देता है। लेकिन ज्योंही यह माशोकान हरजाई उसे छोड़ देती है। हिन्दू हाई स्कूल अपनी मुहब्बत भरी बाहें वा करके इस अज़ खुद रफ़ता आदमी को फिर अपनी गर्म-गर्म आग़ोश में ले लेता है।

नादिम का सही अन्दाज़ा लगाने के लिए उसके आन्तों की बीमारी और ग़लाजत के साथ उसके अटूट नाते पर भी नज़र रखना जरूरी है। वह आन्तों की नामुराद बीमारी का मुस्तक़ल मरीज़ है और यही वजह है कि उसने मुद्दत से शराब को हाथ नहीं लगाया है। गन्दगी और ग़लाज़त में उसे बेहद सकून मिलता है। जिस दिन उसकी क़मीज मैली नहीं होती वह कुछ परेशान सा और झुंझुलाहट में मुब्तला नज़र आता है। हजामत वह शायद हफ्तों के बाद बनता है। वह कभी नहाता है या नहीं, उसके मुतलक़ कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन यह कहना मुश्किल नहीं कि नहाना उसके लिए बड़ी से बड़ी सज़ा के बराबर अज़ाब है। दीनानाथ नादिम को कुछ दिन पहले सरकारी मुलाज़िमत से बरखास्त कर दिया गया। वह इससे क़बल दो-ढ़ाई साल मुलाज़िम रहे और वही सूरत पेश आई जो जंगल के बादशाह को ताँगें में जोत देने से पेश आती है। उस महकमे की लुटिया ही डूब गयी। लेकिन नादिम की लापरवाहियों और बेनियाज़ी के तफील उस महकमे के कुछ शातिरों ने अपनी-आक़बत जरूर संवार ली। तुरह यह कि उन्होंने अपना पेट भरने के बाद इस दरवेश की पीठ पर चोरी का सन्दूक समो देना चाहा। न जाने नादिम इस धुंधलके से किस तरह सुर्ख-रू निकल आने में कामयाब हो गया। लेकिन एक बात साबित हो गई कि उसकी पीठ पर बन्दूक रखकर शिकार करना कितना आसान है।

शायर की हैसियत से नादिम का तजज़िया करना, क़लमी चेहरे के चोखटे में पूरी तरह नहीं समा पायेगा, लेकिन इस में कोई शक नहीं कि इतनी

गर्जदार, पुरजलाल और पुर शिकवा, इतनी ताज़ा और महकती हुई, इस कद्र तबअ ज़ाद और खालिस कश्मीरी आवाज़ हमने मुद्दत से नहीं सुनी। वह हमारे अदब का देवज़ाद है। उसे इनामात नहीं मिले, क्योंकि वह इनामात से बढ़कर अज़ीम है। उसकी आवाज़ में किसी दिलकश इल्हाम की सी नज़दीकी और साथ ही साथ detachment है। लेकिन उसने अपने कलाम की शीराज़ाबन्दी नहीं की। यह काम उसकी शान से फरोतर है। यह तो ऐसा ही हुआ कि कोई चर्चिल विक्टोरिया क्रास के लिए दरख्वास्त पेश करे। शायद उसका बहुत सा कलाम ज़माने के हाथों ज़ाया हो जाएगा। लेकिन अज़मत की जो मुहर उसकी तहरीर पर है, वह उसकी बची हुई चन्द ही नज़्मों को कश्मीरी ज़बान की Legend का रंगीन, दिलावेज़, पुर-अफसून और शानदार बाब बना के दम लेगी। नादिम की शायरी व अज़मत एक तरफ़, उसकी ज़ाती खूबियाँ भी कुछ कम नहीं हैं। उसकी इल्मी सतह बड़ी ऊँची है और वह किसी भी मज़मून पर जो तिब से लेकर तबअयात तक फैला हुआ हो, ताज़ा-तरीन मालूमात के अंबार लगा देता है। इसके अलावा उसकी तेज़ नज़र हक़ायक के वजूद में तीर की तरह चुभ जाती है और इनके जौहर को ब्यान देख लेती है। नादिम ने जिन्दगी में बहुत से समझौते किये हैं और इसलिए वह एक बड़े समझौते बाज़ की हैसियत से मशहूर है। बख्शी गुलाम मुहम्मद ने लेजिस्लेटिव कौंसिल के इन्तखाब में उसे मात देने के लिए कोई दक़ीका फरोगुज़ाश्त नहीं किया। लेकिन जब नादिम जीत गया तो बख्शी साहिब भी उसकी रसीली बातों के असीर होकर रह गए। नादिम ने बख्शी साहिब पर तन्ज़ करते हुए कहा—

"ख्वजि मुहम्मद छु नवाब
म्वम' रूद तोति म्वमय।
अथ प्रचि् वनत' जवाब
चाव मय जमि जमय।।

बख्शी साहिब खफा हो गये तो दूसरे दिन नादिम उनके ऐवान-खाने पर पहुँचा और वहाँ अपनी फसाहत से बख्शी का दिल कुछ इस तरह लुभा लिया कि वह इस "बेईमान" पर अपना ईमान हार बैठे।

सादिक़ साहिब का हमदम और हमराज़ होने के बावजूद नादिम उनके मशीरों में शामिल नहीं और न सादिक साहिब को उनकी रफाक़त में सकून मयस्सर होता है। नादिम की अपनी तवजिह यह है कि मेरे अशार की तेज धार का रूख चाहे किस स्थिति में भी क्यों न हो, मसनदे इक़दार पर बैठे हुए हाकिम को उसकी अज़यत से बचाया नहीं जा सकता।

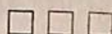
नादिम को आजकल देखिए तो ऐसा मालूम होता है कि वह ग़ालिब के इस मिसरे की तफसीर है :—

"हम भी कुछ खुश नहीं वफा करके
तुमने अच्छा किया......"

उसने ईमान और ईक़ान की राह इख्तियार की थी। लेकिन वह बेय-क़ीनी और यास के धुंधलकों में पहुँच गया है। उसने ज़िन्दगी के जलाल को सीने से लगाया था। लेकिन आज वह उसके जमाल से भी खाइफ है। सिर्फ उसका फन उसके साथ है। उसने एक बार कहा था कि जिस दिन मुझे ताज़ा ग़म से साबिक़ा नहीं पड़ता मुझे एक अजीब किस्म की प्यास महसूस होती है। अच्छा है कि उसकी यह प्यास अभी तक नहीं बुझ पाई और इसलिए उसके फन की आरसी रोज-बरोज ज्यादा ज़ूबार होती जा रही है। नादिम की पिछले ज़माने की नजमें अब बासी लगती हैं। लेकिन उसकी नजमों में जो खुशबू है, वह किसी मसनूई अतर नहीं बल्कि उनके बातिन से आहनी मालूम होती है। किसी ग़जाल के नाफे की तरह—

नादिम का पैकर खाक़ी है और फना होगा लेकिन उसका जौहर उनका आर्ट है, जो ज़माने की दस्तबुर्द से हमेशा महफूज रहेगा।

"आईना" वार्षिक अंक (1969)



"नादिम के शब्दों में कश्मीर के झीलों की गहराई, रेशम की कोमलता, नीलम का रंग और मानवीय सत्यों की शीतलता मिलती है। इन शब्दों मे गंगा की रवानी और वितस्ता की शान्ति है; इनमें कला की अनुभूति और डल के कमलों से बने मधु का माधुर्य हैं; इनमें हिम-धवल शिखरों की गरिमा है; इनमें मानव मन की छनी हुई भावनाएँ हैं; इनमें प्रतीकत्व की उड़ान है और इनमें है कल्पना का रंगमहल। इसीलिए नादिम के गीत सदा सर्वदा के लिए अमर हो गए हैं।"

—अर्जुन देव 'मजबूर'
[रेडियो कश्मीर से प्रसारित वार्ता से साभार]

दीनानाथ 'नादिम' के गीतिनाटक

□ डा० कृष्णा रैणा,

समकालीन कश्मीरी कविता और कश्मीरी नाटक के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में दीनानाथ कौल 'नादिम' का नाम लिया जाता है। एक सशक्त कवि, एक सफल नाटककार और सहज शिक्षक के रूप में इनका नाम महत्त्वपूर्ण है। आरम्भ में इन्होंने अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी में कविताएँ की हैं परन्तु कश्मीरी में ही ये ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जब भारत स्वतंत्र हुआ और देश विभाजन की विभीषिका से गुज़र रहा था, कश्मीर पर आक्रमण के बादल मंडराये उस समय इनकी 'जंगबाज़ खबरदार' कविता के द्वारा देशभक्ति की धारा को प्रोत्साहन मिला। इन्होंने 'काशिरिस शुर्य सुन्द तरानअ' कश्मीरी कविता में एक देशभक्त बालक के माध्यम से नवस्फूर्ति का संचार किया। कश्मीरी कविता को इन्होंने एक नई दिशा दी, उसे परम्परागत बंधनों से मुक्ति दिलाई। कश्मीरी कविता के शिल्पविधान को भी इन्होंने परिवर्तित किया।

मुझे इनके नाटककार ने अत्यधिक प्रभावित किया है। जब जागीरदारी प्रथा को समाप्त करके किसानों को जमीन का स्वामित्व देने का नियम पारित किया जा रहा था, उसी संदर्भ को 'नादिम' साहब लोगों के सामने गीति-नाटय के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे थे, उनका 'यि ज़मीन तसंज येम्य कमोव खेत' अर्थात यह जमीन उसकी है जिसने खेत कमाये—पहाड़ी नृत्य के साथ स्थान-स्थान पर खेला गया। इसके पश्चात् एक और संगीत रूपक 'वावन वोननम' का भी मंचन हुआ, जिसमें साग-सब्जी उगाने वाले मलियारों, कारखानों में काम करने वाले किसानों के श्रम को सुन्दर रूप से चित्रित किया गया है। इन सब मजदूरों और दलितों के पास से हवा आ जाती है और नारा देती है—

'अज़ि कश्मीर अपनी
नेक तकदीर अपनी

सहे कैसे बारूदगर यह वतन हो
सहे कैसे दोज़ख यह बागे अदन हो ।[1]

इस संगीत रूपक को खेला गया और इसके पीछे नेपथ्य में स्वयं कवि की जोरदार आवाज़ में यह पंक्तियां दी जाती हैं। इसी प्रकार नादिम साहब का 'बोम्बर यम्बर-ज़ल' (भ्रमर और नर्गिस) एस०पी० कालेज में सन् 1953 में, नीडोस होटल में 1953 में, नीडोस होटल में ही सन् 1956 में जब रूस के नेता श्री बुल्गानिन और श्री ख्रुश्चोव आये थे, केरल और मद्रास में सन् 1964-65 में, जम्मू में सन् 1965 तथा श्रीनगर के गर्ल्ज कालेज में सन् 1966-67 में मंचन हुआ। नादिम ने अपने गीति-नाटयों के द्वारा यहाँ की अनपढ़ जनता को संगठित और जाग्रत होने के लिए एक आवाज दी। नादिम के 'ओपेरा' की विशेषता यह होती है कि ये केवल मनोरंजन के साधन के रूप में ही नहीं होता अपितु जो इस नाटक को देखते हैं, वे इसके साथ जुड़ जाते हैं, यह जुड़ने की प्रवृत्ति विशेष मानी जाती है। नादिम के गीति नाटकों में कहानी, समस्या, वातावरण, मनोरंजन सब होता है, जिसे वे संगीत, नृत्य और वेषभूषा के अवदान से देते हैं। यहाँ कथ्य और शिल्प साथ-साथ चलता है। गीति नाटक में गायन मुख्य होता है। यहाँ नाटक का माध्यम संगीत होता है। 'नादिम' स्वयं कवि हृदय हैं एक भावुक चित्रकार हैं 'बोम्बुर यम्बरज़ल' में वे एक कवि नाटककार सिद्ध हुए हैं। इनके गीति-नाटकों की ज़मीन साहित्यिक होती है, इन्होंने अपने गीति-नाटकों की कथा का आधार लोक-कथाओं से लिया है। बोम्बुर और यम्बरज़ल में एक प्रेमकथा है। नर्गिस जब प्रफुल्लित होती है उस समय बोम्बुर नहीं होता है, जब बोम्बुर होता है उस समय यम्बरज़ल नहीं होती है अतः यह सदा एक-दूसरे को खोजते रहते हैं इसमें 'हरूद' (पतझड़) और 'तूफान' सामन्तशाही चरित्रों के प्रतीक हैं। नादिम के ये चरित्र यद्यपि प्रतीक है परन्तु हैं सजीव ये पात्र कविता के सारतत्व को प्रस्तुत करते हैं इसलिए इनके हर दृश्य पर एक चित्र उभरता है।

नादिम की 'वितस्ता' भी एक गीतिनृत्य नाटिका है, इसे रंगमंच के लिए उन्होंने सन् 1977 में लिखा। इस गीतिनाट्य में वितस्ता एक साँस्कृतिक प्रतीक है इसमें मराज़ (मधुराज) और कामराज़ (कर्मराज) के बीच परम्परागत ईर्ष्या बताई गई है। इसमें भी प्रेमकथा है। इसका आरम्भ वितस्ता की महत्ता से हुआ है—

"अन्दि अन्दि बाल विगिन्य थज़ कअर
यथ रेशि वारि व्यतस्ता राछ।"[2]

---

1. कोंगपोश (अंक 9), पृष्ठ 3।
2. 'वितस्ता', दीनानाथ 'नादिम', पृष्ठ 31

वसन्त के दृश्य को निम्न गीत रेखांकित करता है—

'सोंत बुलबुल डयूठुमय वार अचि़थ ब्यूठुमय।'[3]

दीनानाथ 'नादिम' सन् 1952 में चीन गए थे। वहाँ इन्होंने 'white hair girls' नाम से ओपेरा देखा था उसके पश्चात सन् 1953 ई० में इन्होंने 'बोम्बुर यम्ब्रज़ल' लिखा था अतः नादिम साहब पर यह प्रभाव भी स्वीकार किया जा सकता है।

'वितस्ता' में जो पुरुष-पात्र और स्त्री-पात्र हैं वे सभी नाग व नदियाँ के प्रतीक हैं—वितस्ता अर्थात व्यथ, स्यन्द, विश्व, लिद्दर, रोमुश, मधुमती, अरिनि आदि तथा पुरुष-पात्र जैसे नीलनाग, वासकनाग, कारकूट नाग, शीशनाग इत्यादि। कश्मीर में वितस्ता यहाँ की संस्कृति का प्रतीक है, इसके दोनों तटों पर अभी भी पूरा शहर और कई गाँव बसे हैं। 'व्यथ त्रुवाह' का त्यौहार अभी भी इसकी महानता को व्यंजित करता है जब उसमें दीपदान किया जाता है। वितस्ता यहाँ एक दुल्हन है जो पर्वतों और वनों से निकलकर आती है, इसके आगमन में इस 'ओपेरा' के सभी प्रतीक पात्र गाते हैं। इस गीतिनाटक को टैगोर हाल, श्रीनगर में यहाँ के कालेज और स्कूलों में, जम्मू के गुलाब भवन में, तत्पश्चात इसका मंचन 7 फरवरी सन् 1977 को आल इंडिया फाइन आर्ट्स सोसाइटी हाल, दिल्ली में हुआ है। इसमें कलात्मक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोग सफल हुआ है। इसके लिए इसकी वेशभूषा में स्थानीय औरतों का 'कलवल्युन' (सिर का विशेष पहनावा) और नीलनाग के ताज के लिए नालन्दा म्यूज़ियम में नागार्जुन की प्रतिमा के ताज के अनुसार बनाया गया है। वोलर राज के ताज को उर्सा झील में पाये जाने वाले सिंघाड़े के आकार का बनाया गया है। इसमें यहां के स्थानीय नृत्यरोफ, हिकट (किकली) भी है तथा स्थानीय साज़ सुरनय, ढोलकी, सन्तूर और सारंग भी है। कश्मीरी लोक साजों के साथ-साथ थालज वाइलिन, सितार और गिटार भी है। इसकी प्रस्तुति में श्री मोतीलाल क्यमू और श्री प्राणकिशोर का महान योगदान है जो स्वयं नाटक और अभिनय के क्षेत्र में अच्छी समझ रखते हैं। नादिम इस गीतिनाट्य के द्वारा कश्मीरी संस्कृति के प्राचीन वैभवशाली अतीत को प्रतिबिम्बित करने में सफल रहे हैं।

□ □ □

3. 'वितस्ता', पृष्ठ 16

दीनानाथ नादिम मेरी नज़र में

□ सुश्री किशोरी कौल

अपने ही मौसेरे भाई नादिम को दूर से देखना मेरे लिए मुश्किल है। नादिम का व्यक्तित्व शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। यह ऐसा व्यक्तित्व है जो समुद्र की तरह है। नादिम एक कवि के रूप में आप सबके सामने है। एक व्यक्ति और विचारक के रूप में शायद उन्हें मैं थोड़ा बहुत समझ सकी हूँ। हम दोनों का ननिहाल एक है—'मुरन'। बचपन से प्रकृति के सौन्दर्य का प्रेम और कश्मीर की लोक संपदा उन्होंने अपनी माता सुन्दरदयदी से सुनी। ननिहाल से उनको महज़ शायरी अपने नाना से विरासत में मिली। हमारे नाना फारसी में शायरी लिखते थे। पिता के स्वर्गवास के बाद उन पर परिवार की जिम्मेदारी आ पड़ी। जद्दो-जहद से उनको जीवन की सूक्ष्मता, सबके प्रति अथाह प्रेम और मनुष्य के निरन्तर दुख का एहसास हुआ परन्तु जीवन के सुखद क्षण भी उन्होंने महसूस किये और अपनी शायरी में उतारे। मनुष्य के अथाह दुख और सुख के कुछ क्षण जो मैंने उन्हीं से सुने हैं यहाँ वर्णन करूंगी।

उनकी माँ, माँ होने के साथ-साथ उनकी परम मित्र थी और गुरू थी। उन्होंने नादिम को जीवन के गहरे रहस्य समझाये थे। 'नादिम' विषाद में डूबे अपनी माँ की अस्थिओं को लेकर गंगबल गए। जीवन के अथाह दुख के भीतर उन्हें प्रकृति की विशालता और सुन्दरता का विषद अनुभव हुआ। खुद का दुख उन्हें इस समय छोटा लगने लगा। गंगाबल की चढ़ाई बहुत कठिन है। जब माँ की अस्थियाँ लेकर ऊपर चढ़ रहे थे तो एक पूर्ण वैराग्य की भावना थी परन्तु ऊपर पहुंच कर अपने होने का एहसास थकान की वजह से महसूस किया, फिर थोड़ी देर शान्ति से बैठ कर उस ऊँचाई से अचानक सामने अगाध सौन्दर्य नजर आया। फूलों की वादी और सामने त्रिकोण पहाड़ उसके पीछे दूज का चन्द्रमा और दो कुण्ड देखे, उष्णकुण्ड और शीतल कुण्ड। उसके बारे में एक पौराणिक कथा

है कि जब शिव पार्वती से बिछड़ गये थे तब पार्वती का एक आँसू बहा था जो शीतल कुण्ड बना और जब शिव पार्वती से मिले तब एक आँसू बहा उसका उष्ण कुण्ड बना।" इस चिरन्तन सौन्दर्य को देखकर नादिम ने अपने दुख को बहुत छोटा मान लिया। भौतिक और मानसिक दुख से उबरने का वर्णन उन्होंने मुझसे कुछ ऐसे किया।

ननिहाल में एक चश्मा है। 'वुज़ब्रेर'। कुछ अरसा पहले नादिम ने इसी चश्मे पर एक खूबसूरत कविता लिखकर मुझे भेजी थी। इस समय जल्दी में मुझे वह कविता नहीं मिली, हाँ उसके जवाब में लिखे हुए खत की प्रतिलिपि मिली।

"मेरे प्रिय शायर, मेरे भाई'

आपकी 'वुजब्रेर' का छल-छल बहता हुआ वर्णन दिलो दिमाग पर छा जाने वाली सुन्दरता है। सारा वर्णन मेरे रोम-रोम में समा गया है मुझे उस 'वन देवता' के तब नहीं अब दर्शन हुए हैं। मुझे लगता है मैं त्रिछल के उसी जंगल में पहुँच गई हूँ वही चश्मा बन गई हूँ जो उस वन देवता की गोद में बहता रहता है और आप जंगल में आये हैं अपनी स्वर्गीय बहन 'चान्दा' को पुकार रहे हैं। मैं सहज ही आपके जिगर का खोया हुआ टुकड़ा चान्दा बन गई हूँ और आपने मेरे माथे को चूम लिया है हजार हा बार। हर बोसा एक फूल बन गया है। और जंगल फूलों से भर गया है चान्दा फूलों के बीच कहीं गुम हो गयी है और वही फूल जो आशिर्वाद के रूप में आपने दिये थे कैन्वास पर उतारने लगी हूँ।"

मुझे लगता है मैं और नादिम दो अलग रचनात्मक माध्यमों में शायद एक ही बात कहने की कोशिश कर रहे हैं। यह अलग बात है कि मैंने अभी तक उनके बराबर भी नहीं पाया है। मुझ पर उनकी गहरी छाप है और मुझे इसका नाज़ है।

□ □ □

आधुनिक कश्मीरी साहित्य के अग्रणी

□ श्री जानकीनाथ भान

मानव-मन की गहराइयाँ अथाह हैं, फिर भी एक कवि अपने दृष्टिकोण और अपने ढंग से उनकी थाह लेता है और जनता-जनार्दन तक उनको पहुँचाता है। 'नादिम' साहब भी उसी पैनी दृष्टि के एक ऐसे द्रष्टा हैं जिन्होंने कश्मीरी साहित्य के आधुनिक युग में एक अग्रणी की भूमिका निभाई हैं। यदि आपको आधुनिकता का एक युग प्रवर्तक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

अखण्ड भारत के विभाजन से पहले नादिम साहिब यदा-कदा गुनगुनाते थे, किन्तु आवाज़ दबी रहती थी, अन्य क्रांतिदूतों की आवाज़ की तरह। भारत स्वतन्त्र हुआ और उसी के साथ कश्मीर में भी स्वातन्त्र्य की उषा का उदय हुआ। नेशनल कांफ्रेंस की सरकार बनी। बड़े विस्फोटक थे वे दिन। चारों ओर शोर हाहाकार, कुलबुलाहट, और न जाने क्या क्या, जब 'हमलावर होशियार ! हम कश्मीरी हैं तैयार !' के नारे गूंज रहे थे। कबाइलियों के आक्रमण के समय "नेशनल कल्चरल फ्रंट' बना तो नादिम साहिब आगे-आगे। विस्फोटक कविता फूट पड़ी और उसके बाद परिस्थितियों ने समय-समय पर नये आयाम सुझाये। 'नादिम' साहिब ने कश्मीरी विधाओं में नए-नए प्रयोग किए—गद्य और पद्य में; जल्प, कहानी गल्प, रुबाई, गीत, दशपदी, चतुर्दशपदी, आदि, गीतिनाट्य, नाटक, इत्यादि। नादिम साहिब ने प्रेमाख्यान और क्रान्तिनाद को समान सिद्धहस्तता से निभाया और नई-नई शैलियाँ दीं। विषय एवं कथावस्तु भाव की दृष्टि से मौलिक और विचारनिष्ठ। शायद ही कोई विधा हो जिसमें नादिम साहिब ने कविता न कही हो एक नया आयाम न दिया हो।

नादिम साहिब बहुत कुछ गुनगुनाते रहे, लिखते रहे—कुछ याद रहा और कुछ भूल गए। फिर से याद आया या याद कराया गया तो मित्रों ने लिख डाला—वे जुत्शी रहे हों, या संतोष या कोई और।

नादिम साहिब के जीवन पर उनकी अपनी माँ, जननी की शक्ति एवं प्रेरणा के स्रोत का-सा प्रभाव रहा, जिसने उनकी चिंतन-शक्ति एवं वाणी को

उद्बोधित करके धाराप्रवाह की नदी बहायी। आपकी माँ ही आपकी गुरु—गुर्वी, प्रेरिका और प्राणदा रहीं।

नादिम साहिब को चीन जाने का निमंत्रण मिला था, तब वह दिल्ली आए थे। यह इस शताब्दी के छठे दशक की बात है। यहाँ मैं उन दिनों 'कश्मीरी बज्मे अदब' का नाज़िम या व्यवस्थापक (बाद में सचिव) था। वे हमारी एक पाक्षिक बैठक में आये थे। घाटी से बाहर कश्मीरी भाषा और साहित्य के संवर्धन एवं प्रोत्साहन सम्बन्धी गतिविधियों को देखकर हर्षोल्लास से गद्गद् होकर बोले थे: 'कश्मीरी भाषा और संस्कृति की मशाल जलती रहे, यही मेरी अभिलाषा है। मैं आह्लादित हूं और विश्वास नहीं होता कि दिल्ली की इस पचरंगी चकाचोंध में इधर कन्नाट प्लेस के हिन्दी भवन में (हमारी बैठकें प्राय: यहीं होती थीं) कश्मीरी साहित्यकारों की गोष्ठी हो रही है उसके बाद नादिम साहिब और दो एक बार दिल्ली आये। बज्मे अदब के दिनों में प्रकाशित होने वाली द्विभाषी पत्रिका 'पम्पोश' में नादिम साहिब की दो-एक कहानियाँ और कई कविताएँ हमने प्रकाशित की थीं। इसी बज्म के तत्त्वाधान में आयोजित दो विशेष समारोह-'लल्लेश्वरी दिवस' और 'महजूर दिवस' पर भी नादिम साहिब के विशेष संदेश प्राप्त हुए थे। तदनन्तर, कश्मीरी समिति, दिल्ली के तत्त्वावधान में 20 वर्ष तक प्रकाशित होने वाले 'कॉशुर समाचार' के सामान्य मासिक एवं विशेष वार्षिक अंकों में भी हमने इनकी कई मौलिक कृतियाँ प्रकाशित कीं। नादिम साहिब भाषा की दृष्टि से विशुद्धतावादी हैं और कश्मीरी भाषा में फारसी, अरबी या गूढ़ संस्कृत के शब्दों के प्रयोग के पक्ष या संकरण से संतप्त हैं। असली रसीली कश्मीरी को बढ़ावा देने के पक्ष में हैं, ताकि कश्मीरी भाषा के माध्यम से इस देवभूमि की संस्कृति की पावन परम्पराओं और जीवन मूल्यों का प्रकाशपुंज बर्बरता के अंधकार को दूर करके सारे संसार की मानवता का अमर संदेश दे और ऐसा उजाला कर दे कि मानवमात्र के डूबते विश्वासों को आशाओं और आकांक्षाओं का नया सवेरा और नया किनारा मिले। पंडित दीनानाथ कौल 'नादिम' कश्मीरी साहित्य की विभूति हैं। मैं उनके स्वास्थ्य और चिरायु की कामना करता हूँ, और यह भी आशा करता हूं कि वह मानव-मन की गहराइयों में और भी गहरे उतर कर कश्मीरी साहित्य को नये-नये आयाम देंगे।



मैंने कश्मीरी अदब को नादिम दिया

☐ अलहाज मिर्जा आरिफ

मैंने कई बार अपनी तक़ारीर में इस बात का इज़हार किया है कि हरगाह मुझ से पूछा जाए कि तुम ने अपनी तवील अदबी ज़िन्दगी में कश्मीरी ज़बान व अदब को क्या दिया है तो मैं बिला तामुल कहूँगा—नादिम !

मुझ से फितरत ने कश्मीरी ज़बान व अदब की जानिब शोआरा-व-अदबा को दावत देने का जो अहम काम लिया है। उसके दौरान मुझे मंगरेज़ों से भी वास्ता पड़ा है और छोटे-बड़े गौहर-पारों से भी और मैं यह बात बसूक के साथ कह सकता हूँ कि हमारी मरदुम-खैज़ सरज़मीन में आला-पाया सलाहियत रखने वाले अफराद की कमी नहीं है।

मैंने जब कश्मीरी ज़बान की तरफ आज से कम-ओ-बेश पच्चास बरस पहले साहिब-ए-इस्तदाद, आला तालीम याफ्ता कश्मीरी मुसनिफीन की बे एतनाई को महसूस किया तो इन्तहाई मायूसी हुई। मैंने देखा कि मुद्दतों से इस अजीम जबान को या तो नाख्वान्दा मनसूफीन के हवाले किया गया था। या फारसी जबान की लोंडी बनाकर एक नाक़ाबिल-ए-क़बूल और अक़सर-नाक़ाबिल-ए फहम ज़रिया बयान बना दिया गया था और जब इस बात का भी मुशाहिदा हुआ कि अकसर-व-बेशतर साहिबान इल्म-ओ-दानिश उर्दू और अंग्रेज़ी ज़बानों के गिरवीदा हैं और इन्हीं दो जबानों को अपने इज़हार-इ-खयाल के लिए इस्तमाल करते हैं। तो मैंने इस अम्र का तहिया किया कि जहाँ भी कोई क़ाबिल-इ-कद्र फ़नकार नज़र आये, उसको कश्मीरी जबान में लिखने की तरग़ीब दे दूं।

इसी मुहिम के दौरान मैंने दीनानाथ नादिम की एक उर्दू ग़जल सुनकर आपको अपनी मादरी-ज़बान की हालत-ए ज़ार की तरफ तवजा दिलाई। आपने

मेरी इस्तदा क़बूल कर ली और आज यह देखकर हम सब कश्मीरियों का सर फ़ख्र से ऊँचा है कि नादिम ने अपनी खुदा दाद सलाहियत से कश्मीर ज़बान और अदब को माला-माल कर दिया है।

नादिम की कश्मीरी शायरी का आग़ाज एक मुख्तसर ग़ज़ल से 1946 के पुर आशोब ज़माना में हुआ, जब कश्मीर में मार्शल ला कानिफ़ाज़ था। यह मुशायरा श्रीनगर के हदूद से बाहर निशात बाग़ में मुनक़द किये जाने की इजाज़त कश्मीर बज़मे-अदब को गवर्नर कश्मीर से हासिल करनी पड़ी थी।

होनहार शायर ने अपनी पहली काविश से ही अपने सामईन के दिल मोह लिए और थोड़ी ही देर के बाद 'नादिम' कश्मीरी शायरी के उफ़क पर एक दरखशंदा तारे की तरह चमकने लगा। आपके लिए शायरी का फन नया नहीं था। आप एक मुश्ताक उर्दू शायर थे। फक़्त ज़बान बदल दी थी। वह ज़बान जो शीरे-मादर की तरह इसके क़ल्ब-ओ-जेहन की नशो-नुमा का बाइस थी। और जिसमें अछूते खयालात को इज़हार करने की सलाहियत होती है। जिसमें एक बाकमाल शायर अपनी दिल की गहराइयों में गोताज़न होकर अनमोल मोतियों को समेट लेता है और हसीन व जमील माला में पिरो देता है।

नादिम मेरे बना करदाह कश्मीर बज्मे अदब के भी सरगरम रुकन रहे और फिर जब सादिक़ साहिब की क़यादत में कश्मीर कल्चरल महाज़ वजूद में आया और मैं कई बरस इसका सेक्रेट्री जनरल रहा। तो 'नादिम' की शायराना वैदनियत और निखर गई।

आप इब्तदा में उम्दा उर्दू ग़ज़ल पर तबा आज़माई कर चुके थे। कश्मीरी ज़बान की तरफ मायल होते-होते तहरीक आज़ादी की दश्त-ओ-जबल को हिला देने वाली गूंज नादिम की शायरी को भी गिरफ्त में लाई और एक हसास दिल रखने वाले नवजवान फनकार की तरह उसकी ज़बान शोला-बयान भी जुल्मों जब्र के ऐवानों में आग लगा देने में मश्गूल हो गई।

शिवदान सिंह चौहान, शीला-भाटिया, बी० पी० एल० बेदी, मिसिज़ बेदी और दीगर रफ़का के साथ कल्चरल महाज़ के झंडे के साया तले नादिम ने अपनी सलाहियों का भरपूर मुज़ाहरा किया।

नादिम का ज़ोरे-बयान मुसलम है और अल्फाज़ की मौज़ूनियत उनका इन्तखाब, उनकी आमद-व-रवानी क़ाबिले दाद।

नादिम एक इन्कलाबी दिलो-दिमाग़ लेकर आया है, जिसको एक ऐसा मौज़ूं इन्कलाबी दौर मिला कि उसने अपने परो बाल ता हदि इमकान खोल दिये।

एक ग़रीब घराने का चश्मो चराग़ होने के बाइस नादिम खुद इस ज़ुल्मों इस्तबदाद की चक्की में पिस कर जवाँ हुआ था। जो इन दिनों हर ऐसे होनहार नौजवान की तक़दीर समझी जाती थी और इसके दिल की सदा इसी चोट की आवाज़ थी, जो आंख खोलने के बाद इस पर मुसलसल पड़ती गई।

तरक्की पसन्द अदब और कम्यूनिस्ट तहरीक ने नादिम के ज़ेहन के तारीक गोशों को और भी रोशन कर दिया और वह उन सारी पुरानी रिवायतों से मुंह मोड़ने पर आमादा हो गया :—

"मैं आज नहीं गाऊँगा
मैं हरगिज नहीं गाऊँगा
गुलो बुल्बुल के गीत
नर्गिस व सुम्बलों के गीत
मैं नहीं गाऊँगा।
मैं उन खुमारह् आलूदह्
जादूभरी आँखों के गीत
नहीं गाऊँगा।
अब ऐसी नज़्में मेरे लिए नहीं है
मैं आज ऐसी गज़लें नहीं गाऊँगा।"

और इसी पक्के अज़्म के साथ नादिम कारवाने इन्क़लाब के साथ कदम आगे बढ़ाता हुआ चलता गया और बीसियों नवजवानों को अपना हम नवा बनाता गया वह उन मदभरी आँखों, होठों, गुल लाला जैसे रुखसारों, सर्वशमशाद जैसे कामतों का शायर न होने का बबाँगे दुहल ऐलान करता है, जिनके लिए कश्मीरी शायरी सदियों से वक़्फ रही थी। और नादिम ने एक बुलंद कामत बाशऊर साहिब-ए फन की तरह अपनी सारी अदबी जिन्दगी में अपने इस अज़्म को पूरा करके दिखाया है।

वह अपने नित नये तजरुबात से कश्मीरी ज़बान को ज़ेबो ज़ीनत देने की फिक्र में लगा रहा। और ज़ाहिर है एक ऐसी ज़बान जिसकी रिवायात ऐसी काविशों के बरअक्स हों। अक्सर इस नये बोझ की मुतहमुल नहीं हो सकती है और बसा औक़ात इसकी नज़में गैर मानी, खुरदुरे अलफाज़ और दूर अज़ काज़ तस्सवुरात से ज़ोके-सलीम पर बार बनती हैं।

नादिम ने इब्हाम को बाज़-औक़ात इतने नाक़ाबिले फ़हम हद तक बढ़ा दिया है कि खुद अपने लिए भी ऐसी चीजें वक़्त गुज़रने पर समझना दुशवार हो गई। रहमान राही ने एक रोज़ ऐसी मुबहम नज़मों के बारे में जोश में आकर

कह दिया कि हमारी यह चीज़ें समझने के लिए दो सौ बरस के बाद लोग बेदार होंगे।

मगर इस बात से इंकार नहीं हो सकता है कि इब्हाम ने अब रफ़ता-रफ़ता जिन्दगी में जौके-अदब रखने वालों के लिए नई और क़ाबिले क़बूल सूरतें इख्तयार की हैं, जो हमारे कई नौजवान शायरों के यहाँ देखने में आती हैं।

नादिम का जोश अभी बरक़रार है। गो अब सिहत की ना दुरुस्ती और क़ौआ के धीरे-धीरे मुज़्हमिल होने से मज़्हबी और रूहानी रंग ग़ालिब आने लगा है।

मेरी दिली दुआ है कि मेरे मौला मेरे नादिम की उम्र दराज़ करे और तादेर ज़बानो-अदब की मज़ीद खिदमत करने की तौफीक़ दे। आमीन !

□ □ □

नयी कश्मीरी कविता के जन्मदाता

"आधुनिक कश्मीरी कविता के जन्मदाता यदि 'महजूर' हैं, तो नयी कश्मीरी कविता के जन्मदाता दीनानाथ 'नादिम'। सन् 1947 के बाद जब प्रथम बार कश्मीरी कविता के विषय तथा शैली में नये प्रयोग हुए तो 'नादिम' इन नये प्रयोगशील कवियों के अगुआ के रूप में हमारे सामने आये। इस समय भी जब प्रायः सभी प्रमुख कश्मीरी कवि एक बार फिर ग़ज़लों की तथा परम्परागत काव्य-रूपों की ओर झुके हैं, 'नादिम' कश्मीरी कविता को रूढ़ि से मुक्त करने तथा उसका रूप संवारने में जुटे हैं।"

वेद राही
चित्रपट-लेखक, निर्माता, निर्देशक
भूतपूर्व सम्पादक "योजना" श्रीनगर

नादिम : एक संस्मरण

□ श्री त्रिलोकी नाथ 'कुन्दन'

1947 के कबाईली आक्रमण के पश्चात् कश्मीरी साहित्य में जो क्रांतिकारी परिवर्तन और प्रगति का एक तूफान-सा आया, उसके कर्णधार के रूप में श्री दीनानाथ नादिम का नाम हमने एक छात्र के रूप में ही सुन लिया था, परन्तु सबसे पहले उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे 1952 में श्रीनगर के बिस्कु मैमोरियल हाल में तब हुआ जब मैं कश्मीर के युवा लेखकों की एक गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए वहाँ पर उपस्थित था। यह गोष्ठी एक ऐतिहासिक गोष्ठी थी, जिसमें स्वर्गीय मास्टर जी ने भी अपनी कविता पढी और नादिम जी ने एक ऐसी कविता पढ़ सुनाई, जिसमें विश्व शान्ति के लिए एक तड़पभरी पुकार थी। मुझे याद है 'सुना है युद्ध छिड़ने वाला है, परन्तु कल न हो' नामक अपनी इस कविता को जब नादिम जी सुना चुके तो प्रोफेसर जयलाल कौल जी ने खड़े होकर तालियाँ बजाकर उनका अभिवादन किया। मैं उन दिनों नया-नया हिन्दी में कविता करने का प्रयास करता था और उस गोष्ठी में मैंने 'मेरी प्रेयसी' नामक एक कविता पढ़कर सुनाई थी। नादिम जी ने इसे बहुत सराहा, लेकिन धीरे से यह भी कहा कि क्या ही अच्छा होता कि यह कविता कश्मीरी में ही लिखी गई होती। उनके इस कथन से मुझे कश्मीरी भाषा में कविता करने की जो प्रेरणा मिली उसी के फलस्वरूप आगे चलकर मेरे द्वारा साहित्य-सृजन हो सका। उनके इस कथन के पीछे कश्मीरी भाषा के प्रति उनका अथाह प्रेम ही नहीं था, बल्कि उनकी यह मान्यता भी थी कि कोई भी कवि अपने उद्गारों को जिस क्षमता से अपनी मातृभाषा में व्यक्त कर सकता है, किसी अन्य भाषा में नहीं कर सकता।

कुछ समय के उपरान्त कश्मीर में नादिम जी द्वारा गठित कश्मीरी कल्चरल फ्रंट की उन गोष्ठियों में जो एग्जीबीशन ग्राउण्ड में होती थी, मुझे सम्मिलित होने का बराबर अवसर मिलता रहा। यहाँ उनकी अनेकों कविताओं

को सुनने का आनन्द मुझे मिला और मैंने देखा कि आरम्भिक क्रान्तिकारी कविताओं जैसे 'मैं आज नहीं गाऊँगा' से लेकर 'मेरा वतन' नामक हृदयग्राही कविताओं तक उनकी जो काव्य-यात्रा चलती रही उसमें सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा भी थी और कश्मीर के परम्परागत लालित्य और सौन्दर्य का सम्मिश्रण भी।

नादिम जी वास्तव में युग-प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने अंग्रेजी काव्य-विधाओं का कश्मीरी भाषा में प्रयोग किया और (जून) नामक सोनेट से आने वाले कवियों के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया। नादिम का कश्मीरी भाषा पर असाधारण अधिकार है, जो उनके 'शशियार' स्थित पुराने मकान में कई बार उनसे मिलकर पता चला कि ये प्राप्ति उन्होंने अपनी माँ से ली थी। मुझे उनके इस पुराने मकान पर उनके पास जाने का कई बार अवसर मिला और उन दिनों मुझे आभास हुआ कि कदाचित आलस्य और नादिम दो पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु आज मैं जब बीते वर्षों पर दृष्टिपात करता हूँ तो पाता हूँ कि यदि ये विशेषता उनमें न होती तो कदाचित नादिम वह सब कुछ हमारी भाषा को न दे पाते, जो उन्होंने दिया। उन्होंने 'बोम्बर तू यम्बरज़ल' नामक ओपेरा लिखकर कश्मीरी काव्य को रंगमंच पर प्रस्तुत किया। ये ऐसी सशक्त विधा थी, जिसने हमारे काव्य-जगत में एक क्रान्ति उपस्थित कर ली। इसके उपरान्त कई वर्षों का बीच में व्यवधान पड़ गया क्योंकि मैं कश्मीर से बाहर चला आया। नादिम से सम्पर्क नहीं रहा। दिल्ली स्थित 'कश्मीरी बज़्म' नामक संस्था द्वारा महजूर की स्मृति में आयोजित एक काव्य-गोष्ठी में वे आये तो हम उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उस दिन 'रिक्शावाला' नामक मेरी कविता सुनी और बड़े ही प्रभावित हुए। यहाँ तक कि वह कागज़ जिस पर कि वह लिखी थी, उन्होंने रख लिया—यह कहते हुए कि इसे प्रकाशित कर लूंगा। मेरे कुछ साथियों ने मुझे चेतावनी दी कि अब ये कविता खो जाएगी, परन्तु मैं उनका इतना आभार मानता हूँ कि उन्होंने इस कविता को इतना सराहा कि अपने स्वभाव के प्रतिकूल इसे संभालकर श्रीनगर पहुंचाया और 'कौंगपोश' नामक अपनी पत्रिका के आगामी अंक में उसे प्रकाशित भी कर दिया। ऐसा है उनका काव्य-प्रेम और ऐसा है उनका स्वभाव—अपने से छोटे लेखकों का उत्साहवर्धन करने का।

यदा-कदा श्रीनगर जाने पर मैं उनसे बराबर मिलता रहा और विशेषकर आज मुझे स्मरण होता है वह दिन-जब जवाहर नगर स्थित उनके सरकारी मकान पर मैं गया। बैठक खाने में कुछ लोग विराजमान थे, जिनसे वह बातें कर रहे थे और वहीं एक कोने में हीटर पर चढ़ी थी एक हांडी—जिसमें उबल रहा

था राजमा और शलगम। उन सब के विदा होने पर उन्होंने मेरे से कुछ मेरी नई रचनायें सुनी और कुछ अपनी सुनाईं। मुझे लगा कि यद्यपि विषय वस्तु की दृष्टि से उनकी कवितायें सर्वथा अछूती थीं, फिर भी उनकी भाषा पर 'अरनीमाल' के पदलालित्य का बहुत प्रभाव था उनकी काव्य-कला का चमत्कार देखना हो तो उनकी कविता 'लखचुन' पढ़ें कोई और देखे कि एक शब्द से पूरी कविता कैसे बन पाती है। ऐसी ही कई भेंटों में एक भेंट उस दिन की थी जब उन्होंने मेरे से कहा था कि वे एक विचार को लेकर लम्बी कविता लिखना चाहते थे। लम्बी कविता न हुई तो सोचा एक छोटी नज्म लिखी जाए या फिर सोनेट ही हो, परन्तु ले-देकर एक 'टुख' मात्र लिख डाला। कैसा है यह कवि, जो एक सागर को छोटे-से प्याले में बन्द करने की क्षमता रखता है।

विदेश से लौटने पर 1972 में मैं जब श्रीनगर गया तो नियमानुसार उनसे जाकर भेंट की। उस दिन उन्होंने विशेषकर आग्रह किया कि मैं विदेश में लिखी अपनी कुछेक कविताओं का पाठ उनको सुनाऊं। मुझे स्मरण है कि जो कुछेक कवितायें मैंने उनको पढ़कर सुनायीं, उनमें से सबसे ज्यादा जो कविता उन्होंने पसन्द की थी, वह वही थी, जिसमें उनका प्रिय विषय 'विश्व शान्ति था'। वे शान्ति के महान समर्थक कवि हैं और उनकी रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कविता को मात्र मनोरंजन का साधन या 'स्वान्तः सुखाय' नहीं मानते अपितु काव्य का महान धर्म मानवता की सेवा और उसका महान उद्देश्य मानवता का कल्याण मानते हैं। इसलिए जब कभी किसी ने मानवता के कल्याण की बात की, अपने काव्य में, शान्ति की ओर इंगित किया—अपनी रचनाओं में अथवा मानवता के मौलिक मूल्यों की बात कही—अपने गीतों में तो नादिम का सिर समर्थन में और प्रशंसा में हिलने लगा। 1953 में नादिम जी के साथ दर्जनों कवि सम्मेलनों में सम्मिलित होने का जो मुझे अवसर मिला था और जिसकी स्मृति स्वरूप एक वह समूह चित्र, है, जिसमें नादिम के साथ-साथ स्वर्गीय महजूर और मास्टर जी तथा राही कामिल, प्रेमी मजबूर आदि अनेकों कवि और लेखक हैं। वह मेरे जीवन की एक बहुमूल्य निधि है, जिसे कि अपने मानस पटल पर संजोए रखता हूं और मेरे काव्य-सृजन में वे एक सशक्त संबल का काम करते हैं।

बीच में नादिम जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। हमने सुना—बड़ी चिन्ता हुई और ईश्वर से प्रार्थना करते रहे कि वे स्वस्थ हों और दीर्घायु हों क्योंकि कश्मीरी साहित्य को उनकी कलम से अभी अनगिनत रत्नों की अपेक्षा है। इसी बीच स्वास्थ्य लाभ करते हुए वे दिल्ली पधारे थे जहाँ वे जे० एन० कौल साहब के यहाँ ठहरे थे। इस परिवार के साथ हमारे निजी सम्बन्ध हैं, इसलिए उनके यहाँ फिर नादिम जी से मिलने का सुअवसर मिला। उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी

कुछेक नूतन कवितायें सुनी और मुझे ऐसा लगा कि वो कुछ देर तक अपने सुरम्य कल्पना जगत में खो से गये। साहित्य जगत में प्रत्येक लेखक का वही स्थान है, जो कि अँधेरे में किसी भी प्रकाश के स्रोत का—चाहे वह एक छोटी-सी मोमबत्ती हो, एक स्नेहपूर्ण दीपक हो अथवा कोई दंदीप्यमान नक्षत्र। इस दृष्टि से प्रत्येक कवि, कहानीकार, उपन्यासकार अथवा नाटककार का हम आदर करते हैं और आभार मानते हैं उनका कि उन्होंने आगामी पीढ़ियों के लिए प्रकाश का सृजन किया। नादिम तो फिर प्रकाशपुंज सूर्य हैं। उन्होंने कश्मीरी साहित्य को जो कुछ दिया, वह एक अमूल्य देन है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भविष्य में भी उनके द्वारा कश्मीरी साहित्य की बराबर अभिवृद्धि होती रहे।

□ □ □

प्रथम कश्मीरी सॉनेट

च्य छुय ना लोल' म्याने याद तिम दोह
गिन्दान ओस सोन यावुन च़ूरि च़ूरे
वुछान आ'स्य अख अ'किस अ'स्य दूरि दूरे
करान आ'स्य काल' पगह'च स'च बरान छ़ोह
न आसुन क्रूठ प्यव हारस कोरुन पोह
छनिथ पन प्यव बहारस लावि मूरे
मगर वुनि चोंग लोलुक सानि ज़ूरे
छु वुज़वान गाश गटकारस करान तोह
अमी अकि गाशि ल'यि थ'व आश सा'नी
पकान गव का'फिला साने अमारुक
अमारस ल'ज फुलय नोव सोन्थ वो'तलयव
गुलालव फ्वलन' विजि र'ट त्राय चा'नी
छु वोश च्योन खोश हवा साने बहारुक
न'विस समयस छु चोनुय नेक परतव

□ दीनानाथ नादिम

अपने आदर्शों से दग़ा नहीं किया

□ श्री त्रिलोकी नाथ पंडित

नादिम साहिब से मेरा सम्पर्क 1955-56 में हुआ जबकि मैं राज्य शिक्षा विभाग में भर्ती हुआ। नादिम साहब उन दिनों युवावस्था में थे और लब्धप्रतिष्ठ कश्मीरी कवि होने के अतिरिक्त तत्कालीन अध्यापक संस्था "आल कश्मीरी टीचर्स एसोसियेशन" (A.K.T.A.) के प्रधान भी थे। यह संस्था उन दिनों इतनी प्रबल एवं प्रसिद्ध थी कि इसका प्रधान एक मन्त्री से भी अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावी नेता माना जाता था। "टीचर्स एसोसिएशन" का एक विशेष कार्यभार मेरे तरुण कन्धों पर उस समय पड़ा जब राज्य विधान परिषद् के लिए अध्यापक वर्ग से एक सदस्य 1957 में निर्वाचित किया जाना था। नादिम साहब को संस्था ने अपना प्रत्याशी मनोनीत किया था। इस प्रकार मेरा उनके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हुआ।

उनके महान व्यक्तित्व के कई रूप मेरे सामने आए। वे उच्चतम कोटि के कवि थे। राजनैतिक क्षेत्र में उनकी पहुँच मुख्यमन्त्री तक थी। यदि वे चाहते तो राजनीति के क्षेत्र में उच्चपद पर बड़ी सरलता से पहुँच सकते थे। इसके लिए उन्हें अपने आदर्शवाद से थोड़ा हटकर प्रत्यक्षवादी बनना पड़ता किन्तु उन्होंने अपने आदर्श से दगा नहीं किया, अपितु एक साधारण अध्यापक का जीवन व्यतीत करना ही स्वीकार किया। जो उनके अन्तर्मन की त्याग भावना का परिचायक है। हम जैसे साधारण कार्यकर्त्ताओं के साथ भी वे आत्मीयता का भाव रखते थे। और उनके पास बैठकर हम कभी यह अनुभव नहीं करते थे कि हमारी बातों की अवहेलना हो रही है। यही कारण है कि वे आज तक हमारे प्रेम और आदर के पात्र बने हुए हैं।

नादिम साहब की वास्तविक प्रतिष्ठा उनके कवित्वपन के कारण है। वे जन्मजात कवि हैं और सरस्वती देवी की कृपा उनपर आजतक बराबर क़ायम है।

यही कारण है कि जबकि वे वृद्धावस्था के कारण शारीरिक रूप से अत्यन्त निर्बल हो चुके हैं, उनका कवि हृदय अब भी पूर्णरूप से स्वस्थ एवं प्रबल है। रेडियो से उनका कविता पाठ इस बात का प्रमाण है। अपनी इस विशेषता से वह सदा ही अवगत थे। एक बार उक्त अध्यापक संस्था के महासम्मेलन में एक वादविवाद के दौरान उन्होंने दो टूक घोषणा की कि—"मुझे चाहे राजनीति से संन्यास लेना पड़े, इस संस्था से भी नाता तोड़ना पड़े, किन्तु अपना कविता लेखनकार्य मैं कदापि त्याग नहीं सकता। क्योंकि इसके बगैर मेरा जीवन अपूर्ण ही नहीं, निरर्थक है।" और इस घोषणा को उन्होंने बाद में अक्षरशः सिद्ध भी कर दिया।

नादिम साहब उच्चस्तरीय, लब्धप्रतिष्ठ नेता एवं कवि होने के बावजूद भी हृदय से शिशु के समान सरल हैं। और यह सरलता आज भी उनसे बात-चीत करते हुए स्पष्ट दिखाई देती है। यही कारण है कि वे कई बार ठगे गए—अध्यापक सम्मेलनों में भी, उच्च सरकारी पद ग्रहण करते समय भी तथा राजनैतिक क्षेत्र में भी। तथाकथित प्रगतिशील राजनैतिक नेताओं ने यथावसर उनके प्रभावशाली नेतृत्व की सेवाओं का उपयोग किया—बल्कि शोषण किया कहना अधिक समीचीन होगा—और फिर स्वार्थसिद्धि होने पर भुला दिया। इन सब बातों का निजी रूप से मेरा अनुभव है।

नादिम साहब का कवि हृदय ही उनकी सर्वोच्च सम्पत्ति एवं थाती है। कश्मीरी भाषा के तो वे कदाचित सम्राट ही हैं। उनकी कविताओं में ठेठ कश्मीरी शब्दों का प्राकृतिक रूप में वर्णन हुआ है। पाठक हैरान रह जाता है कि श्रीनगर में निवास करने वाले यह कश्मीरी कवि उन ठेठ एवं अप्रचलित शब्दों को कैसे जानते हैं जो सुदूर देहातों में भी कम ही लोग जानते हैं। कश्मीरी जनसमुदाय के प्रत्येक वर्ग की शब्दावली, सभ्यता एवं संस्कृति की तह तक उनकी पहुंच है, जिसे उन्होंने अपनी कविताओं में प्रदर्शित किया है। निजीरूप से सम्पर्क होते हुए भी मुझे बहुत देर के बाद यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी कविताएं लिखी हैं। हिन्दी भाषा पर भी उनका पूर्णाधिकार है। यदि उन्होंने हिन्दी भाषा में लिखना न छोड़ दिया होता तो वे आज भारत के सर्वोच्च हिन्दी कवियों की गणना में आते। वे बहुत समय तक राजनैतिक-दलदल में भटकते रहे। यदि वह समय भी उन्होंने लेखन कार्य में ही लगाया होता तो कदाचित वे आज विश्वभर के प्रख्यात कवियों में गिने जाते।

वैचारिक दृष्टि से श्री दीनानाथ 'नादिम' नास्तिक होते हुए भी आदर्शवादी रहे हैं। उन्होंने कुछ आदर्शों, कुछ उच्च मानव मूल्यों के आधार पर अपना

स्वप्नलोक निर्मित किया। प्रत्यक्ष रूप में उन मूल्यों और आदर्शों को मलियामेट होते हुए देखकर भी वे सदा अपने ही स्वप्नलोक में विचरते रहे। यही कारण है कि प्रत्यक्ष जगत में जिस उच्चपद के वे अधिकारी थे, उसे वे प्राप्त न कर सके किन्तु उनका आदर्शलोक इतना सत्य एवं स्वस्थ्य है कि उसी में विचरते रहने में वे सन्तुष्ट दिखाई दे रहे हैं।



आदनुक पोश

वारि वुछुम कुन पोशा फोलमुत शोख-गुलाला पारा ह्य
दिलसइ ज़न वुशनेरा फ्यूरुम चेश्मन प्योम शेहजारा ह्य

मोत यावुन ज़न पोत आम फीरिथ हावसनई ज़न
शाह-फ्युर गोम

दोसि प्यठ व्यसि सा'त्य छ़िफ दिथ आमुत कथँ
करने लोकचारा ह्य

होछि मचि़ कानँजि लिर फ्युर ज़न द्युत द्रमनन
कोर बेयि ज़ुवनुक संज़

ज़न द्राव बुजि कुजि देदि कुन ज़ेननि गोबरा
तंख्वाह दाराह्य

समयचि होन्ज़ि ज़न लखचुन प्रज़लयव चमनन
ज़न रँट सोंतस सै

चिलै कलानुक ताप दोहा अख माघस
बास्योम हारा ह्य

हवाहस ज़न ल'ज मँऽज़ा पादन छ़टि त्रोव लोत
महारेनि रफ़तार

हरद - ज़दस गुलज़ारस ज़न गोड़ पेतरन
रंग दस्तारा ह्य

मुदै गंडिथ मे थलि थलि वुछमस दोपमस
नविनै कुनिसई बाग़

दागाह ह्यथ बति ज़िंदगी सुलवान चति
दाद्युक इज़हारा ह्य

—'नादिम'

नादिम की कविता में समस्त गुणों का समावेश

□ श्री बालकृष्ण 'सन्यासी'

कश्मीरी भाषा के महान कवि श्री दीनानाथ नादिम वितस्ता के दाहिने तट पर स्थित शशियार मुहल्ले में रहा करते थे। उनके समीप ही उसी मुहल्ले में सड़क की दूसरी ओर मेरा भी जन्म हुआ है। मेरे स्वर्गीय पिता पण्डित गोपी नाथ वैष्णवी उनके घनिष्ठ मित्रों में से थे। दोनों की आपसी मैत्री के परिणाम-स्वरूप तथा और गणमान्य व्यक्तियों के सहयोग तथा सक्रिय योगदान से हिन्दू हाई स्कूल की स्थापना हुई।

नादिम एक गरीब घराने से सम्बन्ध रखते हैं। चूंकि मेरे पिताजी भी मध्यम घराने से सम्बन्ध रखते थे और हिन्दी-उर्दू कहानियाँ तथा नाटक आदि लिखने में निपुण थे—नादिम और मेरे पिताजी आपस में बहुत निकट आए। हाँ इतना सा अन्तर जरूर था कि जहाँ नादिम एक प्रगतिवादी और क्राँतिकारी कवि रहे हैं वहाँ मेरे पिताजी समाज सुधार सम्बन्धी विषयों को लेखनीबद्ध करते थे। दोनों शतरंज के खिलाड़ी थे और समय पाकर इसी खेल में व्यस्त रहते थे।

इन्हीं परिस्थितियों में मेरा नादिम के साथ परिचय हुआ और मैं इस प्रकार उनके समीप आया जैसे एक पुत्र पिता के। बाल्यकाल में बहुत से ऐसे अवसर आए जब मैं उनके बहुत ही निकट आ पहुँचा और उनके व्यक्तित्व का प्रभाव मुझको धीरे-धीरे उनकी ओर प्रवृत्त करने लगा।

नादिम हिन्दू हाई स्कूल के संस्थापक होने के अतिरिक्त एक निपुण अध्यापक भी थे। इसी कारण अध्ययन-काल में भी मैं उनके व्यक्तित्व से वंचित न रहा तथा उनकी प्रौढ़ प्रेरणा मुझ में भी साहित्यिक प्रवृत्ति उत्तेजित करने लगी। वैसे तो मैं बाल्य-काल से ही हिन्दी कहानियाँ लिखने में रुचि रखता था और इसका कारण शायद यही था कि मेरे घर में कुछ अनुकूल साहित्यिक वातावरण

विद्यमान था। परन्तु हाई स्कूल में प्रवेश पाते ही श्री नादिम के व्यक्तित्व ने मुझ में कविता करने की रुचि भर दी।

यह बात मुझे आज तक याद है कि नादिम के प्रोत्साहन से 1957 ई० में और सहपाठियों के सहयोग से एक साहित्यक वातावरण की नींव पड़ गई और उसी वर्ष इस क्षेत्र में निबन्ध तथा कहानियां लिखने की कई प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ जिसमें मैं भी कहानी लिखने के लिए पुरस्कार से सम्मानित हुआ। उसी वर्ष साहित्यिक वातावरण से रुचि रखने वाले छात्र-समुदाय का श्री नादिम द्वारा राज्य सरकार के सूचना विभाग के साँस्कृतिक अधिकारी श्री शमीम अहमद शमीम से परिचय कराया गया और हम सब ऐसे छात्रों के नाम सचित्र उनकी पत्रिका 'बच्चों का तामीर' में 'बाल-लेखक' शीर्षक के अन्तर्गत छपाए गए। इसके परिणामस्वरूप हम सब लोगों में एक साहित्यिक उमंग और उत्तेजित तथा उजागर हो गई। इस सब का श्रेय केवल नादिम को ही प्राप्त है।

नादिम की शिक्षा का ढंग न्यारा है। रूढ़ि तथा परम्परा का मार्ग अपनाने की अपेक्षा वे बच्चों में एक स्नेह की भावना भरते हैं और उनके वचन उपदेश से भरे होते थे। उनके बोलने का ढंग भी अद्भुत है। बहुगुण सम्पन्न होने के कारण ही मैं उनकी ओर धीरे-धीरे आकर्षित होने लगा। उनके काश्मीरी ओपेरा 'नेकी और बदी' को 1958 ई० में जब मंच पर खेला गया तो उसमें मुझे भी भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नाटक के पूर्वाभ्यास के दिनों जितनी भी बार हम से गलतियाँ होती थीं उतनी बार नादिम स्वयं अभिनय करके हमें समझाने की कोशिश करते थे और डाँट-डपट का मार्ग कभी नहीं अपनाते थे। 'नेकी और वदी' के पूर्वाभ्यास के दिनों ही इस बात का संकेत मिलता था कि नादिम संगीत के गुणों से सम्पन्न हैं। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि उनके कुछ निकटवर्तियों के अनुसार 'बोम्बुर-यम्बर्ज़ल' के पूर्वाभ्यास के दिनों निर्देश देते समय घटनाओं का अभिनय वे इस प्रकार करते थे जिससे इस बात का परिचय मिलता था कि मानो उनमें संगीत शास्त्र का ज्ञान कूट-कूट कर भरा हो। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि नादिम कविता और संगीत को एक-दूसरे से अभिन्न नहीं समझते हैं। 'नेकी और बदी' का प्रभाव मुझ पर इस प्रकार पड़ा कि मैं कविता लिखने के लिग प्रेरित हो गया।

यह कहना भी गलत होगा कि नादिम केवल प्रगतिवादी अथवा क्रान्तिकारी कवियों में अग्रसर रहे हैं। वास्तव में काश्मीर की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं से वे पूरी तरह परिचित थे। आरम्भ में उन्होंने कुछ 'लीलाएँ' भी लिखी हैं और नीलमतपुराण में वर्णित गाथाओं तथा रीति-रिवाजों को भी अपनी कविता में दर्शाया है। इसका जीता-जागता प्रतीक उनका ओपेरा 'व्यथ' (वितस्ता) है। अपेरा में संगीत और नाट्य का सम्मिश्रण होता है। वास्तव में

नादिम की कविताओं में प्रगति, क्रान्ति, रीति, शृंगार तथा मनोवैज्ञानिक अनु-संधानों का संगम है। उदाहरणतः उनकी कविता के कुछ एक पद्य—'ब'ग्यवन ग्यवन ग्यवनअज' अथवा दूसरी कविता के पद्य, '···वज़ोल वोज़ुल वुशुन वुशुन इ रथ पनुन···' जहाँ एक प्रगतिवाद अथवा क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं वहाँ उनकी दूसरी कविता की यह पंक्ति 'लखचि कु लखचुन बुंम्बिहेंजि सुमि तल···' एक शृंङ्गारिक भाव का चित्रण करती है। उनकी अन्य कविता के चन्द एक पद्यों '···च्यति वाती पानै वार्य च़ पव हल पार्य लगै···'' तथा 'नाबद त ट्यठव्यन' के शीर्षक के अन्तर्गत उनकी कविता का अध्ययन करने से बात बिल्कुल प्रकट होती है कि मानव के शोषण तथा उस पर किए गए प्रहारों और अत्याचारों और मानव की आन्तरिक उलझनों तथा समस्याओं की छाप उन पर अत्यन्त गहरी लगी थी।

सारांश में यह कहना विवादास्पद न होगा कि नादिम ने एक ऐसे प्रगति-वाद की नींव डाली जो रीति-रिवाजों तथा परम्परागत सांस्कृतिक विचारों का परस्पर विरोध नहीं करता है। एक बार श्री रहमान राही, जो उनके समकालीन कवियों में से हैं, ने जब उनसे यह प्रश्न पूछा कि 'आप प्रगतिवादी होकर भी परम्परागत रीति-रिवाजों को आधार बनाकर कैसे अपनी कविता को व्यवहार में लाते हैं' ? तो नादिम का उत्तर था कि 'यदि प्रगतिवाद परम्परागत रीति-रिवाजों का विरोध करता है तो मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूंगा कि मैं प्रगतिवादी कवि नहीं हूं'।

नादिम की भाषा शुद्ध कश्मीरी है जो अन्य भाषाओं के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त है। कारण है कि उनकी कविता शब्द-माधुर्य से भरी है। उनकी शैली सरल, मधुर तथा ध्वन्यात्मक है। यह कहना भी गलत न होगा कि उनकी कविता में शुद्ध काश्मीरी भाषा का समस्त शब्द-भण्डार भरा हुआ है। उनकी शैली में शब्द-प्रवाह भी अनोखा है जो सहृदय के मस्तिष्क में अनायास घुसकर घर कर लेता है और तत्पश्चात् आश्चर्य में डालता है।

नादिम 1940 ई० के उत्तरार्ध के कवियों में से हैं। उनके समकालीन उल्लेखनीय कवियों के नाम इस प्रकार हैं—

मास्टर ज़िंदा कौल, अब्दुल अहद आज़ाद, महजूर, रहमान राही, अमीन कामिल, अहद ज़रगर, मिर्जा आरिफ़ बेग़ तथा फ़ाजिल काश्मीरी।

अब्दुल अहद आजाद की क्रान्तिकारी कविता, महजूर के शृंगारिक वचन, रहमान राही के प्रगतिवाद तथा शृंगार से भरे वचन, अमीन कामिल का सूफ़ीवाद तथा सामाजिक कुरीतियों पर कसा हुआ व्यंग, मास्टर ज़िंदा कौल और अहद ज़रगर का दार्शनिक तथा अश्के हक़ीक़ी और अश्के मजाज़ी से मिश्रित

काव्य, मिर्ज़ा आरिफ बेग की संजीदा कविताएं तथा फ़ाज़िल की नातियाः श्रृंगारिक और विशेषकर उनकी 'काल क्रूर'—यदि इन सबको तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो यह कहने में झिझक न होगी कि नादिम इस पीढ़ी के महान कवि हैं क्योंकि इनकी कविता में उपर्युक्त समस्त गुणों का समावेश है। इसके अतिरिक्त काश्मीरी कविता में उनका योगदान ओपेरा (Opera), सोन्यट (Sonnet) तथा शब्द प्रवाह में काश्मीरी भाषा के लुप्त शब्दों के रूप में है। वैसे नादिम की कविता आवश्यकतानुसार वाक्, ग़ज़ल, तथ नज़म से भी अलंकृत लगती है।

लेकिन इतना कहते हुए भी इस बात से अत्यन्त खेद है कि जबकि नादिम इस पीढ़ी के महान कवियों में अग्रगण्य हैं। उनका अपनी कृतियों का संकलन अथवा संग्रह आज तक प्रकाशित क्यों नहीं हो सका? एक बार, कुछ वर्ष पूर्व, जब मैंने उनसे यह बात पूछी तो उत्तर में उन्होंने कहा कि 'आपके पिताजी स्वर्गीय गोपीनाथ जी ने अपने जीवन काल में अपनी कृतियों का क्या कुछ प्रकाशित किया?'

□ □ □

सॉनेट

दोह अकि कोह प'त्य ज़ून ख'च़ चोट हिश
नालस छ्यनिम'च तनि वछ' त्रा'विथ !
रो'प तनि हनि हनि दाग ननरा'विथ
पन' पन' गोमुत पोंगुर पो'ट हिश !
ज़ून ख'च़ चो'ट हिश बो'छि ल'ज बालन
ज़ून मो'ज़्यनि कसताम छलरा'विथ
ठेक'दरन थव अख पुशरा'विथ
फुटवा'टिस सा'त्य रो'पया खो'ट हिश !
ज़ून खच़ चोट हिश थ'चिमच़ गोट हिश !
ओ'बरन ह्यच़ वेयि ग'ज छ्यवरावनि
वन-विग्यन्यव ज़न प्यो'व वो'थ' दानस
बन' कुल्य ज़न ख'त्य संगरमालन
म्यति ह्यच़ फाक'-फ'रिस श्यछ बाव'न्य
अ'छ्य फिर्य-फिर्य वुछ म्यति आसमानस।

—दीनानाथ नादिम

(हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 127 पर)

कविता में रुचि बढ़ी उनके पढ़ाने के ढंग से

□ श्री स्वरूप नारायण पिशन

यादों की पिटारी खुलते ही यादें आंखों के सामने साकार हो रही हैं। 'श्री प्रताप सिंह विद्यालय'···1949 नवमीं कक्षा का कमरा छात्र बतिया रहे हैं, कि कुछ छात्र-अध्यापकों का प्रवेश, एक लम्बे कदावर छात्र-अध्यापक स्व वस्तुएं लिए आए और मेज पर रख दी छात्रों को अच्छे ढंग से बिठाया और अपनी प्यारी-पैनी नजर से देखते रहे : कुछ अध्यापक पिछली बैंचों पर बैठ गए थे।

आज मैं आपको 'Abu Ben Adam' अंग्रेजी कविता के विषय में कथा सुनाऊंगा, उन्होंने सरल अंग्रेजी में कथा सुनाई, कविता की 6, 8 पंक्तियों का कविता-पाठ किया, छात्रों को भी पढ़ने के लिए कहा, कुछ कठिन शब्दों को श्याम-पट पर लिखा और उन के शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करवाया, छात्रों के पास जा-जा कर उनके उच्चारण को शुद्ध किया, फिर Abu Ben Adam' का चार्ट दिखाया—'फिरशता लिख रहा है और अ० बे० ऑदम देख रहे हैं; पुनः कविता-पाठ तथा चार्ट दिखाया—'फिरशता ऑ० बे० ऑदम को नामों की सूची दिखा रहे हैं, छात्रों का भय काफूर हो गया, कविता में रुचि बढ़ी नादिम जी के पढ़ाने के ढंग से स्नेह से सभी प्रभावित हुए वह दिन बरबस याद आता है मानो सामने खड़े पढ़ा रहे हों।

सत्थू अपने घर में—वर्ष ध्यान नहीं आ रहा, शायद 1950 श्री नादिम मेरे बड़े भाई को पढ़ाते थे, मैं प्रायः चुपके-चुपके देखता पढ़ाते थे मन से, प्यार से, स्वकार्य में तन्मय, कठिन स्व परिश्रम से ही उन्होंने अच्छी शिक्षा पूरी की।

शीतलनाथ में मंच से कविता-पाठ, वर्ष—1950 'हिन्दी-प्रचारिणी-सभा' का वार्षिक उत्सव था, दूसरे दिन कवि-सम्मेलन हुआ, मेरी बहन 'निर्मल कुसुम काचरू' इस कार्य में सक्रिय थी, मैं भी कवि-सम्मेलन में कविताएँ सुनने के

लिए गया। बस, नादिम जी द्वारा सुनाई कविता बार-बार याद आ रही है और किसी कविता का अब ध्यान नहीं रहा, "कालिंग से राजघाट तक" कविता क्या थी, सिंह गर्जना ही अब भी कानों में गूंज रही है, वीर-भाव घोल रही है, उनकी ओजस्वी-वाणी। यही था वह दिन जब मैंने उन्हें एक प्रखर कवि के रूप में देखा, और सुना।

'श्री प्रताप सिंह महाविद्यालय' सम्भवतः 1955-56 एक काश्मीरी नाटिका 'बुंबर त यंबरज़ल' का मंचन सायं महाविद्यालय के हाल में हुआ, कई दिन तक चला, काफी लोकप्रिय हुआ, 'नादिम' की काव्य-प्रतिभा, लोकगीत, लोक साहित्य के प्रति रुचि का आभास मिला, इसके पश्चात दिल्ली में भी इस नाटिका को दिखाया गया और प्रसिद्ध हुआ।

"हिन्दू विद्यालयों" के अध्यापक तथा प्रधानाचार्य के रूप में, काफी तन-मन-धन से सेवा कार्य-त्याग भावना से किया, अपनी मौलिक प्रतिभा, प्रखर योग्यता से आने-वाले नए लेखकों, नए अध्यापकों और कवियों को बहुत प्रेरित किया।

'प्रगति शील लेख-संघ के वह प्राण थे, सशक्त-जागरूक नेता परन्तु जैसा होता है कि व्यक्ति के योगदान को भुला दिया जाता है। अध्यापकों द्वारा अध्यापक सेनेट के लिए चुन जाना उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

दिल्ली में जनवरी 1971, अरुणाचल से आया था छुट्टियां मना रहा था परन्तु एक दिन 'नादिम' जी के दर्शन हुए वे अपने परम मित्र श्री ओमकार काचरू जी से मिलने पधारे थे, मिल् के प्रसन्नता का क्या कहना, बहुत बातें हुई। उन्होंने भी काफी जानकारी दी। चर्चा विषय रहा काश्मीर के लोकगीत, लोक कथाएं आदि, मुझे स्पष्ट बताया कि मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि लोकगीतों, कथाओं आदि में आपस में बहुत कुछ साम्य है। अरुणाचल-साहित्य के कुछ लोक-गीत-कथाओं का संग्रह कीजिए। इस भांति उनसे बात-चीत पर्याप्त सार्थक तथा प्रेरक रही, और उनकी विस्तृत साहित्यिक जानकारी, परख पर आश्चर्य हुआ। परन्तु मेरा दुर्भाग्य तबादला हो जाने के कारण अरुणाचल का एक ही लोकगीत संग्रह कर पाया। इस तरह बात-बात में भी प्रोत्साहित करते हैं कुछ करो तुम भी 'नादिम' जी।

ललदद्यद-विद्यालय कार्यालय में एक बार मैं उनसे मिलने गया (1980) वे चाय तेलवॉर खा रहे थे, रिसेस का समय था, दो एक अध्यापक बैठे थे। बातों-बातों में "राजतरंगिनी" पर बात चल पड़ी इतिहास का आपरेशन हुआ। शासक गण कश्मीर के इतिहास को स्व-इच्छा अनुसार तोड़-मरोड़ रही है। स्थान-स्थान के ऐतिहासिक नामों को बदल रहे हैं जिन नामों को सुनते ही मानों

इतिहास के पुराने पृष्ठ खुल-खुल जाते हैं। मेरा मत है कि इतिहास का लेखन निष्पक्ष-रूप से होना चाहिए। सत्य छुपाने से छुपता नहीं, राजनीति की झूठी चाशनी चढ़ाकर इतिहास नहीं बनता यदि बना तो कभी भी पिघल सकता है सत्य की आंच में। इस बात से वह दुःखी लगे।

1984 जून मास में श्री "नादिम" जी से मिलने की प्रबल-इच्छा थी पर कर्फ्यू के कारण मिलना सम्भव नहीं हो पाया। आशा थी यदि मिला होता तो मेरी नज़र और साफ हो जाती उनके विषय में कुछ और अधिकार से कह पाता।

□ □ □

चूर

म्य छु द्रामुँत कुसताम चूरकरिथ
नाहकय लार्योस छिटॅ्‌पोंपुॅर्य छारॅनि वार्येनॅमंज़
अॅछयनाटॅुकरिथ तंबुॅलोवुस अज़ताम रंगुॅ छ़ायव
दोह द्यन गुज़ुॅरोवुम ज़ोनुम लोॅब म्यय लोॅब
पॅत्यकिन्य न्यू सोरुय कम्यताम गव म्य फरिथ
ठ्यक्य तापुॅक्य सोंतुॅक्य हरदुॅक्य रंग
यॅतुॅकालुॅचि छ़ांटू तुॅ शीनुॅ शरुथ
असुॅवुन शोखा वसुॅवुॅन्य माय
प्रथ कुनि डुवदिथ गव चूर
तुॅ व्वन्य क्याह छुम बाक़्य
अख फुटुॅमुॅच़ कांगुॅर
तॅथ्यमंज़ शीनुॅ टुजाह।

□ दीनानाथ 'नादिम'

[हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 128 पर]

कश्मीर के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक वैभव

□ डा० कौशल्या वल्ली

1960 के लगभग की बात है। पी० एच० डी० की उपाधि के लिए शोधकार्य की समाप्ति के उपरान्त मेरा इलाहाबाद से कश्मीर लौटना हुआ। अध्यापन की इच्छा ने मुझे शिक्षा-क्षेत्र में अपना स्थान खोजने की प्रेरणा दी। इन्हीं दिनों श्री दीनानाथ नादिम से मेरी भेंट हुई।

कश्मीर श्री नादिम को कश्मीरी भाषा के एक शिखर कवि के रूप में जानता है, मानता है और पहचानता है। उनके मानवीय पक्ष की अनुभूति का सौभाग्य किसी-किसी को ही मिला है। सहानुभूति, संवेदना, आवश्यकता और आपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता करने की आन्तरिक तड़प—यह सभी गुण श्री नादिम को मानव समाज के लिए एक विभूति प्रमाणित किए हैं।

एक कश्मीरी ब्राह्मण घर में उत्पन्न, अपनी विधवा माँ से ललद्यद के वाख और नुन्द ऋषि के श्रुख सुनकर, श्री नादिम को बचपन में ही अपनी साँस्कृतिक विरासत से घनिष्ठ परिचय हुआ। अपने व्यक्तिगत जीवन में शैशवावस्था से ही श्री नादिम को स्वकीय आर्थिक विवशताओं ने, समाज में आर्थिक विषमताओं के दर्शन कराए। फलस्वरूप इनकी उत्कट इच्छा समाजवाद को स्थापित करने की हुई। भगतसिंह के निकटतम साथी तथा समाजवाद की स्थापना के हार्दिक इच्छुक कामरेड धनवन्तरि ने श्री नादिम को मानवतावादी मार्क्सवाद में प्रेरित किया।

सत्रह साल की आयु में श्री नादिम ने आंगल भाषा में कविता लिखने का प्रयास किया। तत्पश्चात्, चकबस्त, जोश मलिहाबादी, अहसान बिन दानिश तथा इक़बाल की कविताओं से प्रेरित होकर उर्दू भाषा में लिखना प्रारम्भ किया।

मानवीयता की भावना ने श्री नादिम को जम्मू कश्मीर में धर्मरनिरपेक्ष सरकार की स्थापना के आंदोलन में 1938 ईस्वी में, शेख अब्दुल्ला के साथ सम्पर्क कराया और ये नेशनल कान्फ्रेन्स के अन्तरंग सदस्य बन गए। इनकी लेखनी ने, नेशनल कान्फ्रेन्स के लिए, इनको सक्रिय सदस्य क़रार दिया। अपने भाषण में जज़बाती विचारों को कविता में प्रस्तुत करने के कारण 1938 के सितम्बर मास में, श्री नादिम को क़ैद के दर्शन कराए गए—

"शहीद की जो मौत है
वह क़ौम की हयात है।
उनके रंगीले ख़ून ने—
कश्मीर जिंदा कर दिया।"

क़ैद के साथ ही, तब तक की श्री नादिम की सभी कविताएं जब्त की गई जो बाद में खो गई।

एहसान दानिश ने कश्मीर आकर श्री नादिम के समय के साथियों को प्रेरित करके उनकी सुप्त भावनाओं को जाग्रत किया।

1946 ईस्वी में, श्री नादिम ने कश्मीरी भाषा में लिखना आरम्भ किया। कश्मीरी भाषा में नई कविता का समारम्भ श्री नादिम ने ही किया। मायाकोवस्की की कविता से गहनरूपेण प्रभावित होकर, कश्मीरी कविता की सामग्री और उसके रूप को श्री नादिम ने सम्पूर्णरूपेण परिवर्तित किया। लोकभाषा और लोकमुहावरों का प्रयोग करने से कश्मीरी कविता को यथार्थवाद से ओत-प्रोत किया।

1949 में, कश्मीरी भाषा में मुक्त—कविता, लघुकथा, भावनृत्य, आलोचनात्मक निबन्ध और संगीतविशिष्ट नाटक (Opera) का सूत्रपात श्री नादिम ने ही किया। सत्य की बुराई पर विजय को लेकर, 1953 ईस्वी में, श्री नादिम ने 'बोम्बर यम्बरज़ल' नामक ओपेरा लिखा। इस ओपेरा को देखने से जनता जागीरदारी और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने को प्रेरित हुई। यही संगीत विशिष्ट नाटक, 1955 ईस्वी में, कश्मीर में रूसी नेताओं ख़ुश्चेव एवं ब्रेजनेव इत्यादि के प्रथम आगमन पर, प्रस्तुत किया गया था।

इसके अतिरिक्त छः अन्य संगीत-विशिष्ट नाटक श्री नादिम के द्वारा लिखे गए हैं। आपेरा के अतिरिक्त लगभग दो सौ कविताएं, कश्मीरी भाषा में, श्री नादिम ने लिखी हैं। इनकी रचनाएं या तो स्थानीय पत्रिकाओं में छपी हैं, या अखिल भारतीय रेडियो से प्रसारित हुई हैं।

1957 में श्री नादिम विधान परिषद् के सदस्य चुने गए। छः साल तक विधान परिषद् के सदस्य के तौर पर इन्होंने जम्मू-कश्मीर की जनता की अनथक सेवा की।

श्री नादिम की जीविका का साधन अध्यापन कार्य रहा है। 'अध्यापक' होने का उनको गर्व है। 1940 में स्वतः स्थापित विद्यालय में इनकी प्रथम नियुक्ति हुई थी। 1943 में गांधी मेमोरियल महाविद्यालय की स्थापना का सुझाव श्री नादिम का ही था। गांधी मेमोरियल महाविद्यालय, उस समय जम्मू-कश्मीर में अपने ढंग का प्रथम महाविद्यालय था।

1948 में जिला नेशनल कान्फ्रेंस में, श्री नादिम का चयन हुआ। 1947 में, राष्ट्रीय सांस्कृतिक फ्रण्ट में सम्मिलित हुए। 1950 में 'प्रगतिवादी लेखक संस्था' के महामन्त्री चुने गए। 1949 से लेकर 1952 तक राष्ट्रीय सांस्कृतिक संस्था के सदस्य रहे। 1951 में कश्मीर शान्ति संस्था के सदस्य चुने गए। 1951 से 1953 तक अखिल भारतीय शान्ति संस्था के सदस्य मनोनीत हुए। 1952 में अफ्रीकी एशियाई और शान्त महासागर शान्ति सम्मेलन के तौर पर श्री नादिम चीन गए थे। 1954 से लेकर 1956 तक सर्वप्रदेशीय सांस्कृतिक सम्मेलन के महामन्त्री रहे। 1955 से 1960 तक कश्मीमीरी अध्यापक संस्था के अध्यक्ष के पद पर कार्य करते रहे। 19:5 से लेकर अखिल जम्मू-कश्मीर लद्दाख अध्यापक संस्था के महामन्त्री रहे हैं। 1960 से कश्मीर राष्ट्रीय रंगशाला के अध्यक्ष रहे हैं।

श्री नादिम ने 'कोंगपोश', 'उस्ताद' और 'गाश' का सम्पादन किया है। 1955 से 1957 तक साहित्य अकादमी के सदस्य रहे हैं। 1960 से जम्मू-कश्मीर अकादमी से सदस्य हैं। 1960 से ही आकाशवाणी कश्मीर की सुझाव समिति के सदस्य रहे हैं। पाठ्य पुस्तक सुझाव संस्था के सदस्य, प्रादेशिक शिक्षा सम्बन्धी अधिकारी सम्मेलन के सदस्य, कश्मीर लोक संस्था के अध्यक्ष, 'कोशुर मरक़ज' के अध्यक्ष, हिन्दू मुस्लिम शान्ति समिति के महामन्त्री तथा ललद्यद मेमोरियल हायर सेकेण्डरी विद्यालय के प्रिंसिपल के तौर पर श्री नादिम का योदगान शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, राजनीति अर्थात् समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सदैव स्मरणीय है तथा भावी पीढ़ी एवं वर्तमान की युवा पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा-स्तम्भ है।

तीन वर्ष पहले अकस्मात रोगग्रस्त होने से श्री नादिम का शरीर कुछ अस्वस्थ हैं, किन्तु वह मन से बिल्कुल स्वस्थ हैं। 'व्यथ' नामक लिखा हुआ संगीत विशिष्ट नाटक श्री नादिम के जीवन के रहस्य को बतलाता है। वे

मृत्यु में नहीं अपितु जीवन में विश्वास रखते हैं—शाश्वत जीवन में ! इसी जीवन्त विश्वास ने उन्हें 'व्यथ' नामक संगीत-विशिष्ट नाटक लिखने को प्रेरित किया।

कश्मीर शैवदर्शन का क्षेत्र है। शैवदर्शन के केन्द्र-स्थल कश्मीर में उत्पन्न श्री नादिम का जीवन में विश्वास उनकी सहज परम्परा में मिली सांस्कृतिक अध्यात्मिक सम्पदा को बतलाता है।

उनकी धर्मपत्नी सुख-दुःख में उनके साथ छाया की भांति रहती है। उनके सुपुत्र श्री 'अहिंसा' आदर्श पुत्र होकर उनकी सेवा में तत्पर हैं।

परमशिव से यही हार्दिक प्रार्थना है कि कश्मीर के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक वैभव श्री नादिम के शरीर को पूर्णरूपेण रोगरहित कर ले जिससे कश्मीरी भाषा और भी अधिक अत्यधिक धनी हो जाय।

□ □ □

नादिम छु नफा

मस्तान्' आ'रिफ सानि अदबॖचि हूरि कनुक दूर।
मजबूर पकान लूर डखविथ ज़ार तय रंजूर॥
टाकार्' वनय सारि अदबॖकि कार् बारुक राज़।
ना'दिम छु नफा गाट्र' आ'रिज मूल छू महजूर॥

□ आरिज

नादिम मेरी नज़र में

□ सुश्री निर्मल 'कुसुम' काचरू

जब भी 'नादिम' साहब पर मैं लेखनी उठाती हूं, मेरे सामने उनका बहु आयामी व्यक्तित्व अनेक रंग-रूपों में उभरकर आता है। हर बार मुझे ऐसा लगता है कि मैं उनको जैसा जानती हूं, समझती हूं, पूरा बता नहीं पा रही।

कश्मीरी भाषा के साहित्य में विशेषकर काव्य क्षेत्र में श्री दीनानाथ नादिम का स्थान ऐतिहासिक महत्व का है। महजूर और आजाद यदि कश्मीरी आधुनिक काव्य के भारतेन्दु हैं तो नादिम कश्मीरी साहित्य के निराला व नागार्जुन हैं। महजूर एवं आजाद आधुनिक काल के निर्माता कवि हैं। उन्होंने कश्मीरी भाषा को साहित्यिक भाषा बनाया। काव्य को गेयात्मकता प्रदान की। सरल और सुबोध भाषा में सामयिकता से जुड़े—उन्होंने काव्य को पुरानी परम्पराओं की गलियों से मुक्त वातावरण में संपादित किया। कुछ नए प्रयोग भी किए। लेकिन नादिम साहब ने आधुनिक साहित्य को पुष्पित पल्लवित ही नहीं किया है, अपने समय के अन्य उभरते कवियों को प्रभावित किया। नए विषय नई विधाएँ देकर नए मार्ग पर चलाया तथा आगे आने वाली पीढ़ी को प्रेरणा दी, मार्गदर्शन भी कराया। एक नया अध्याय जोड़ दिया।

समय-समय पर विभिन्न-विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न पदों को उन्होंने बड़ी योग्यता से सुशोभित किया है। यह प्रगतिशील लेखक संघ, नेशनल कल्चरल कांग्रेस, कश्मीर पीस कमेटी, आल स्टेट कल्चरल कांग्रेस आदि कितनी ही संस्थाओं के जनरल सेक्रेट्री रहे। सदस्य, प्रधान, चेयरमैन भी रहे। कश्मीरी टीचर्स एसोसिएशन, काशुर मरकज़, श्रीनगर आदि बहुत संस्थाओं का संचालन किया है।

नादिम साहब ने 17 वर्ष की अल्पायु में ही लिखना आरम्भ किया था। प्रारम्भिक रचना उन्होंने अंग्रेज़ी में लिखी। 1936 में श्रीनगर में उन्होंने एक संस्था समाजवादी-परिषद (सोशलिस्ट क्लब) नाम से बनाई। भगतसिंह उनके

विद्यार्थी जीवन के प्रिय नेता थे। (जैसा कि उन्होंने एक बार बताया था।) चकबस्त और इक़बाल के काव्य ने उन्हे बहुत प्रभावित किया। स्वाध्याय में उनकी सदा गहन रुचि रही है। कश्मीरी हिन्दी-उर्द साहित्य के अलावा कितने विदेशी बुद्धिजीवियों, दार्शनिकों तथा साहित्यकारों को जानते-पहचानते व समझते हैं।

1937 में नेशनल कान्फ्रेंस का ऐतिहासिक आन्दोलन चला। इस आन्दोलन में उन्होंने क्रांतिकारी कविताएं लिखकर सक्रिय भाग लिया। परिणामस्वरूप घर पर छापा डाला गया और बंदी बना लिए गए। उन दिनों उन्होंने सुन्दर कविताएं लिखी। एक कविता के कुछ अंश देखिए—

कलहण यहां के हशमत के गीत गा चुका है
'काली'[1] ने इस चमन में देखी शकुन्तला है,
था पाणिनी ने ग्रामर शंकर से सुन लिया था
ललता[2] ने इस वतन से दुनिया मिला लिया था।

यह पंक्तियां लिखते मुझे अनायास इक़बाल की कविता "हिंदुस्तानी बच्चों का कौमी गीत" याद आ रहा है—

चशती ने जिस जमीं में पैगामे हक़ सुनाया
नानक ने उस चमन में वहदत का गीत गाया।

......इस उदाहरण के देने से मेरा अभिप्राय यह है कि नादिम साहब ने साहित्यिक तैयारी के प्रथम चरणों में ही ग़ालिब के बाद उर्दू शायरी में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने वाले इक़बाल के टक्कर की कविता लिखी। अपनी मौलिकता व भावपक्ष में ज़रा भी कम नहीं है। वह देश को बता रहे हैं—हम क्या थे...और यह भी बताया कि हम क्या हो गए हैं—

सदहैफ इस वतन की यह हो गई है हालत,
इफ़लास का यह घर हो और मसकने जहालत।
अंगारे कांगड़ी में, है दिल में दाग रौशन,
कुर्ते की 'कांगड़ी' में गम के चिराग रौशन।

कवि नादिम ने हिंदी में भी लिखा है, और बहुत अच्छा लिखा है। उनकी एक कविता 'कलिंग से राजघाट तक' जिसे उन्होंने शीतलनाथ में एक सम्मेलन में सुनाया था—आज भी मेरे कानों में गूंजती है। अहिंदी-भाषी होकर भी यह कवि की बहुमुखी प्रतिभा ही है कि कवि जीवन के तैयारी काल में उन्होंने उर्दू हिंदी में लिखा और अच्छा लिखा। लेकिन जल्दी ही नादिम साहब ने

1. कालिदास।
2. पूरा नाम 'ललीश्वरी' सूफी कवयित्री।

अनुभव किया कि उर्दू-हिंदी में लिखकर वह अपनी आवाज़ आम जनता तक नहीं पहुंचा सकते। अतः आज़ाद की तरह उन्होंने कश्मीरी भाषा के महत्व को पहचाना और सन् 1940 से कश्मीरी में निरन्तर लिखने लगे। उन्होंने पहली कविता "मोज कशीर" (माँ कश्मीर) लिखी। कविता में कवि मातृभूमि को संबोधित करते हुए कहता है—"हे मां! तुमसे किसने कहा कि तू विवश है, बेकस है, किसने कहा कि तेरे बुलबुल पराजित, वीरानियों में मुख मोड़े हुए हैं। तू (मां) हिमालय की अग्रजा पुत्री है तभी भरपूर अलंकारों से दीप्त है।"

1946 में "कश्मीर छोड़ दो" आंदोलन चला—कवि इस आंदोलन के साथ बढ़ा। साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन के तो वे प्राण ही थे। उन्होंने 1949 में स्वतंत्रता संग्राम की सुबह पर कविता लिखी—"वथी बागचि कुकली" 'जागो बाग की कोयल'—उन्होंने विभाजन का विरोध किया—[1]"आज कहते हैं कि कश्मीरी किसान का विभाजन करेंगे, निशात-शालामार के टुकड़े करेंगे, क्या हम सहन करेंगे, कि हमारी जान बट जाए···" नहीं कवि की आत्मा इस विचार का विरोध करती है।

[2]"धरती किसान की है" कवि ने इसका स्वागत किया···वह कहते हैं "धरती किसान की है, हम कश्मीरियों ने उचित और नया कदम उठाया है।"

नेशनल कल्चरल फ्रण्ट (कौमी कल्चरल मुहाज) अस्तित्व में आया और नादिम की कविता समय के साथ कदम बढ़ाती चली गई। समय की मांग को सजाते-संवारते हुए—"नारे इंकलाब" (क्रांति का नारा) में नवयुवकों को संबोधित कर अजय शक्ति की याद दिलाते हुए कहते हैं—"हे नवयुवक तुम आग हो, अलाव हो, यौवन की ऊष्मा हो। अगर तुम वसंत की बयार हो तो इस समय घटाओं में न छिपो, तुम पर्वत और जंगलों को चीर कर, काट कर बाहर आओ। तूफान ले आओ—तूफान बन जाओ। तुम कारवान बनो, कश्मीर के पासवान बनो।"[3]

---

1. दपन अज़ करव अज़
   काशरिस काशकारस······
2. अ़सि का'शिर्य तुल् नो'व सत कदम······
3. चु नार छुक, अलावछुक च, यावनुक जलावछुक
   अगर चु सोंत नाव छुक,
   म रोज ओबर तल खटिथ, च नेर ककोह तुवन चदिथ,
   तूफान तुल तूफान बन
   च मीरि कारवान बन
   कशीरि चासबान बन

एक अन्य पद्य में कहते हैं—"सारा संसार तुझे देख रहा है। कमर बांध तैयार होना। कश्मीर के भाग्य संवार, हमारी शान-वान को आधार उठा।"

कवि ने अपने काव्य के द्वारा कश्मीरी भाषा की संपन्नता के दर्शन कराए हैं। भाषा का मौलिक नवीन प्रयोग, नए छंद, नई लय, शब्दों का सुन्दर चयन, शब्द चित्र, ध्वनि चित्र सब अनूठा भी है, नवीन भी। मुक्त छंद, स्वच्छंद छंद की शैली पर भी पहली बार नादिम ने काव्य रचना की है। उनके काव्यगत भावपक्ष व कलापक्ष के सौंदर्य के उदाहरण दे-देकर बताने में तो समय और स्थान दोनों की आवश्यकता है। अतः केवल रेखा भर खींच रही हूं।

नादिम की उपमाएं सजीव और मौलिक हैं। कुछ कविताएं तो मालोपमा के सुन्दर चित्र हैं। कविताओं की पूरी की पूरी पंक्तियां मौलिक उपमाओं से भरी हुई हैं—[1] "रोटी-सा चांद उदित हुआ।"

"नादिम ने पहली बार कश्मीरी भाषा में कई[2] सोनेट लिखे। यह लेखक की और कश्मीरी साहित्य की नवीन उपलब्धि है। कवि ने कई सुन्दर 'ओपेरा' भी लिखे, जिसमें "बंम्बुर यम्बरज़ल" बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिसका श्रीनगर में सफल मंचन भी हुआ।

नादिम साहब के जीवन में राजनीति और प्रगतिशील विचारधारा इतनी घुली-मिली है जैसे धमनियों में रक्त, अतः उनका काव्य, काव्य भी है और जीवन की अभिव्यक्ति भी। उनकी वैचारिकता आत्मा के रंग में रंगकर बोलती है, उनका साहित्य इस बात की पुष्टि करता है कि साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता साहित्य को साहित्य के स्तर से नीचे नहीं गिराती, साहित्य को और जानदार बना देती है। उनकी कविता लोगों के जीवन की कविता है जिससे साफ और सरल भाषा में जीवन की व्याख्या है। भाषा पर नादिम का पूर्ण अधिकार है। उनकी हर कविता साहित्यिक निधि बन गई है। हो सकता है अन्य महान चर्चित साहित्यकारों के मुक़ाबले नादिम ने लिखा कम हो पर उनकी हर रचना अनुपम है।

कवि का बिम्ब विधान और प्रतीक योजना मौलिकता और नवीनता लिए हुए है। आम आदमी के दैनिक जीवन को प्रतिबिम्बित करती है। जीवन के हर्ष-उल्लास और जीवन के अभाव में दुःख-दैन्य दोनों का स्वाभाविक चित्रण नादिम की विशेषता है।

"मैं न गाऊंगा आज" उनकी एक और महत्वपूर्ण दस्तावेज़ी कविता है "युद्ध के बादल देश पर छा गए हैं। बन्दूकों की आवाज में बुलबुल की आवाज़

1 ज़ून खच् चॊट हिश्
2 चौदह पंक्तियों का छंद (अंग्रेजी का)

खो गई है···खो गई है। इस लिए मैं—फूलों के, बुलबुलों के, सुंबल और कुंतलों के, खुमार भरे नयनों के मधुर-मधुर तंद्रा भरे गीत नहीं गाऊंगा। कवि देश-वासियों के दुःख-दैन्य अभाव से पीड़ित है। अतः वह फूलों के, बुलबुलों के प्यार के गीत नहीं गाएगा। वह तब गाएगा जब फिर वसंत की महक सब तरफ फैल जाएगी। मैं नई तेज कलम तलवार लेकर बढ़ूंगा। मैं लुटेरों से, दुश्मनों से हथौड़ा कलम और दराती लेकर टक्कर लूंगा और दृढ़ आहनी इरादा लेकर हर जगह घूमूंगा और हर खतरे को झेलूंगा। हर रोम के स्वेद-कण से मैं अपने प्यारे चमन (देश) को सींचूंगा और मैं पर्वत-खाई खड़ चश्मे आदि···हर स्थान को अपूर्व प्रकाश से भर दूंगा। मैं पक्के इरादे के साथ हथौड़ा कलम और दराती लेकर निकलूंगा।"[1]

नादिम के काव्य में उचित साभिप्राय प्रयोग सर्वत्र मिलता है। कश्मीरी जीवन के रीति-रिवाजों तथा वैचारिकता को इतनी स्वाभाविकता से उपमाओं-रूपकों में बांधते हैं कि आम आदमी भी भाव विभोर हो जाता है। नादिम साहब के कविता बोलने का तरीका भी प्रभावशाली है। मुझे याद है एक बार जन-समूह में वह अपनी कविता "त्रिवंज:" बोल रहे थे। उनकी कविता के बोल के उतार-चढ़ाव के साथ लोग क्रियाशील हो उठे थे।

मैं हमेशा ही उनकी कविताओं से प्रभावित हुई हूं। उनकी कल्पना की सुकुमार विराटता, सृजनात्मक साहस, वैचारिकता की विपुल समृद्धि, संघर्ष की अनवरत प्रक्रिया उनके काव्य का अनिवार्य अंग रहा है। कविता में ओज मुझे प्रिय है और ओज नादिम की कविता का प्रमुख गुण है। अपने विद्यार्थी जीवन में उनकी "इरादा" नाम की कविता "प्रोग्रैस्यु यंग राइटर्स एसोसिएशन में मैंने सुनी थी। उसकी शैली और बोल दोनों ने मुझे अंदर तक छुआ था··· बहुत वर्षों बाद अध्यापक दिवस पर मैंने एक कविता लिखी थी—

"जवान हम जवान हैं
रंगों में गर्म-गर्म लाल-लाल
रक्त का बहाव है···"

---

1. बु ग्यव न आज
गुलन तु बुलबुलन तु सुंबुलन
हंदुइ खुमार होत्
त् मार मोत्
मोदुर मोदुर त् न्यंदरि होत्
सु नग़्म कांह
बुग्यव न् अज़ सु नग्म काहं

यद्यपि कविता का विषय बिलकुल भिन्न था फिर भी लगता है नादिम का आशावादी रूप कहीं गहरे में मुझे प्रभावित कर गया था, "इरादा" कविता की कुछ पंक्तियां देखिए—

[1]"गर्म लाल लाल गर्म
लाल गर्म गर्म गर्म
गर्म लाल—
है···खून मेरा
जवान हूं तूफान सा—
जनून मेरा······"

"मैं चाहता हूं मैं कश्मीर पर शहीद हो जाऊँ अपनी जान दे दूं···मैं आँधी हूं, मुझे यह तूफान क्या करेगा···हमें बाढ़ बनकर शत्रुओं को बहा देना चाहिए···मेरा खून गर्म है लाल है···अपने देश की आजादी के लिए लड़ने में मुझे खुशी है···

नादिम साहब का काव्य देश की राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन की अपने आप में एक कहानी है, सुन्दर इतिहास है। दूसरे महायुद्ध के बाद सारे विश्व में शांति आंदोलन हुआ। इस आंदोलन में भी नादिम ने पहल की। इस विषय को लेकर कई कविताएं लिखी। जिनमें "आमन की अपील पर दस्तखत" तथा "मुझे आस कल की" बहुचर्चित है और कश्मीरी काव्य की अनमोल निधियां हैं।

इन्होंने केवल लेखन के द्वारा ही शांति आंदोलन का साथ नहीं दिया बल्कि अन्य लेखकों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों को साथ लेकर सभाएं व सम्मेलन भी किए जिसका प्रभाव उस समय की सामयिक पीढ़ी श्री कामिल, श्री राही आदि तथा नई पीढ़ी के कितने ही उभरते कवि कलाकारों पर भी पड़ा।

*"अमन की अपील पर दस्तखत" नादिम की एक सुन्दरतम रचना है, जिसमें युद्ध की विभीषिका में शिकार एक महिला का चित्रण है—

[2]मैंने उससे कहा—
इस काग़ज़ पर दस्तखत करो

---

2. वुशुन वजुल वशुल वुशुन
वजुल वुशुन वुशुन वुशुन
वुशुन वजुल वजुज वुशुन नु खूब म्योन
जवान छुस तूफान ह्यू जनून म्योन।

1. मे दोपमस् कागदस् प्यैठ कर च़ दसखत
[illegible]

पर जब मैंने उसकी आंखों में देखा
मेरे हृदय में वेदना गहरा उठी…

उसकी अंधेरी आंखों की अनेकों अर्थपूर्ण उपमाओं से समता की है। उसका सौन्दर्य तो मौलिक रचना में ही देखते बनता है फिर भी झलक भर देने का प्रयास कर रही हूं—

[1]दो बादल पर्वतीय चशमे में विश्राम करते से,
दो दूध के प्यालों में खाली झाग-सी,
खिले जैसमिन की दो पंखुडी सी—
दो नरगिस भ्रमरों से अचुंभित से
श्वेत कमल के दो जन्मे शिशु से
एकटक इन्तजार में सुबह की—

[2]उसने पलकों में थरथराते अश्रु को कागज़ पर मोती की लड़-सा टपका दिया…वह अश्रु सूखकर चांदी के पट पर (कागज़ पर) सोने के अक्षर हो गए…अभी भी वह अक्षर अमन की रक्षा करते चमक रहे हैं।

"मुझे आस कल की" कवि की एक ओर अमर कविता है। यह लम्बी कविता है और तीन भागों में है. पहले भाग में मां कहती है—

[3]मुझे कल की आशा है

---

1. तसिंज तिम् चश्म फोलमित ही वथर जन
यंबुर ज़ल बोम्बर् रोस वेगाश जोराह
दिवान सदरस छि व'न्य आकाश जोराह
दोदै प्यालन अपुज़ खचमच् छि थुर जन
2. अछर वालव दुनन् दिच् अश फयरम दुन्
पथर पेय कागदस प्यठ मोक्त लर जन
होखिथ गय रोप पटिस प्यठ सोन अच्छर जम
छिय् अमनस राछ वुन्य तिम् शोल मारन
*[अमन अपीलि प्यठ दसखत]

3. मे छम आश पगहच
पगाह शोलि दुनिया
दोहस गाश हुरि गुल त् गुलजार प्रज़लन
ज़मीनस स्सर लगि त् सबज़ार प्रज़लन
वछस गूंज़ हुमिस लोल फंवार प्रज़लन
पगाह शोलि दुनिया
दपन जंग छु वथवुन
पगाह गोछ न सपदुन…

कल मेरा हसीन होगा
(मैं मां बनूंगी)
कहते हैं युद्ध होने वाला है…
कल नहीं होना चाहिए,
कल मेरा संसार खुशियों से भर उठेगा…

दिन और उजाला होगा और कुंजवन फूल और सुन्दर हो उठेंगे। धरती सरसरा उठेगी और हरियाली और हरी हो जाएगी और वक्ष में प्यार के फव्वारे मचल उठेंगे…

दूसरे भाग में प्रेमिका कहती हैं—

[2]मुझे कल की आशा हैं
कल उसेसे (मिलने का) वादा है
मैं—दिन डूबते
झाड़ियों के साये में—
इंतज़ार करूंगी
हीमाल-सी प्यार और चाव से
इंतजार करूंगी
कोई बात नहीं
भले ही देर हो जाय
मैं इंतजार करूंगी—

कहते हैं युद्ध होने वाला है/कल नहीं होना चाहिए/कल मुझे उनसे मिलना है।

---

2. म्य छम आश पगह'च
पगाह वाद'छुम तस
ब् दोह लूस्यनैन ह्य् थर्यन छ्यि प्रारस
तु हीमाल ज़न लोल तु माय प्रारस,
गछ्यस चेर क्याह गम छु—बे वाय प्रारस,
पगाह वाद छुम तस
दपन जंगछु वोथवुन/पगाह गोछ न सपदुन
पगाह वाद छुम तस/पगाह गोछ् न सपदुन

और तीसरे भाग में पत्नी कहती है—

[1]मुझे कल की आशा है
बच्चों के पिता आएं
जैसे ही आवाज़ (पुकारने की) सुनूंगी
मैं—
स्वागत करूंगी
कसकर—
आलिंगन में बांध लूंगी
और खुशी में झूमूंगी
नए घास की—
नर्म कोमल शैया बनाऊँगी
बच्चों के पिता आएंगे···

कहते हैं युद्ध होने वाला है/कल नहीं होना चाहिए/बच्चों के पिता लौटेंगे/कल नहीं होना चाहिए।

[2]"वावन वोननम" उनकी एक और प्रसिद्ध कविता है। इसमें कवि कहते हैं—"कश्मीर हमारा है, किसे हिम्मत है कि हमारे वतन पर आरा चलाए···इसे बांटे तकसीम करे। हम सहन नहीं करेंगे कि हमारा देश बारूद का घर बने और हमारा चमन (देश) रौंदा जाय"। कितने ही कलाकार कवि, चित्रकार, संगीतकारों ने इस तरह युद्ध को रोकने के—शांति के महत्व को

---

1. म्य छम आश पगहच
   शुरय्‌न मोल काव्यम
   युथुई बोज़' अलाव तिथुई ब्रोंठ नेरस
   रटन नालमति ज़ोर अंदि-अंदि बु फैरस
   नविस ताज़् गासस प्यठ जाय शेरस।
   शुरयन मोल वत्यिम
   दपन जंग छु वोथवुन/पगाह गोछ न सपदुन
2. वावन वोननम (हवाने कहा)
   बु छस वाव आमच (मैं आई हवा हूं···)
   छु कशीर सोन···
   जिगर कस छु वतनस लितर वाई सीनस
   ज़रव मा बनावुन गरस शोर खान'
   ज़रव मा करुन जनतस आनमाने

चित्रित करने वाली अभिव्यक्ति की। [1]श्री रहमान राही ने—"मैं सहन नहीं करूंगा कि मेरे शालामार जैसे बागों में कोई बारूद बोए। या कोई मेरे लालज़ार (कश्मीर) को लूटना चाहे, कोई मेरी बहारों को खोखला कर दे··· मैं सहन नहीं करूंगा"···

श्री नादिम ने जैसा कि मैं पहले भी कह चुकी हूं राजनैतिक व साहित्यिक दोनों आंदोलनों में सक्रिय सहयोग दिया। कश्मीरी साहित्य को ठोस आधार दिया। संपन्न बनाया। इन्होंने प्रायः साहित्य की सभी विधाओं को अलंकृत किया है। महाकवि तो वह हैं हीं। आलोचनात्मक निबंध, [2]हमारा कारवां आगे-आगे बढ़ता गया, जैसे [3]कहानियां, रेडियो, रूपक, संगीत फीचर, श्रम गीत, सोनेट, मुक्त छंद, गीत आदि विभिन्न रूपों में अपने आपको व्यक्त किया।

"कोंग पोंश" कश्मीरी भाषा की प्रथम साहित्यिक पत्रिका का संपादन भी किया और उसे संवारा भी। इनकी कविता में परंपरा की, अपनी मिट्टी की गंध भी है और वर्तमान की नवीनता भी। लोक गीत, लोक धुन के साथ-साथ धर्मनिरपेक्षता, विश्वमानवता वैज्ञानिक वैचारिकता भी है। एक ओर वह साम्राज्यवादी, पूंजीवादी व्यवस्था का खुला विरोध करते हैं, तो दूसरी ओर आम आदमी के सच्चे दोस्त बनकर व्यथा कथा को सहलाने के साथ उठने और बैठने की प्रेरणा भी देते हैं।

1971 में मानववादी शांति प्रेमी कवि को सोवियत नेहरू एवार्ड मिला ·· नादिम साहब कश्मीरी जनमानस के ही नहीं विश्व मानवता के इनसान दोस्त

---

1. बुमा जर
   अगर शोर हेय काहं बुवन शालमारस —श्री अब्दुल रहमान 'राही'
   अगर लूट यच्छि काहं करुन लालजारस
   अगर काहं ज़ज़ुर चानि म्या'निस बहारस
2. कोंग पोष
3. जवाबी कार्ड कश्मीरी भाषा की पहली कहानी।

कवि हैं। उनसे अभी बहुत आशाएं हैं···उन्हीं के शब्दों में—

मेरा काम बाकी है*
बहुत काम बाकी है
बहुत काम, भला काम,
रुका काम बाकी है···

□ □ □

---

* म्यछम काम बाकी
म्यछम काम् छम काम् छम् काम बाकी
म्य छम वारयाह् काम
बाकी
स्यठा कोम रुच कोम रूज़िथ गामच् काम
बाकइ
म्य छम काम बाकी

□ □ □

हा'र्यसाथ

बूट खोराह अरव वति प्यठ प्योमुत
आ'सा वा'हरिथ छारन त्रेश !
हूना अख आव लमुनाह को' रनस
फुचि मचि बुथ्य खंजि द्युतनस फेश
डालाह दिथ न्यून नालि अंकिस कुन
त्रेशि ह' तिस मा अज फुट त्रेश ?

□ नादिम

अनुगूँज

इस खंड में हम कविवर नादिम जी की कुछ प्रतिनिधि कविताओं के हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं।

—सम्पादक

ऐसा है संसार हमारा

ऐसा है संसार हमारा !
इसमें खिलकर सुमन अमन का नित सन्देशा लाते हैं,
सिर पर शीतल छाया करके प्यार चिनार जताते हैं,
अर्जुन—सा जोधा रहता है इसकी पहरेदारी में,
बुद्ध यहां करुणा के आँसू बोते क्यारी-क्यारी में,
गाते हैं महजूर यहाँ पर काश्मीर की घाटी से,
राग रवीन्द्र उठाया करते बंग-देश की माटी से,
यहाँ शराफ़त और मुहब्बत की बहती रहती है धारा;
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा।

पनघट पर धोती है दादी झुर्री वाले गालों को,
या कि वितस्ता के पानी में चाँदी-के-से बालों को,
खिली खुमानी की डाली-सी दादी खुश हो जाती है,
अपनी अंजलि भर-भर कर वे आशीष लुटाती है,
ईश्वर से बिनती करती है, भला चाहती जन-जन का,
अपनों का हो, गैरों का हो, और भला हो दुश्मन का,
लल्ल-द्यद को जैसे हिन्दू प्यारा वैसे मुस्लिम प्यारा;
देखो, ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा।

वुलर किनारे बैठा माँझी, देखो, क्यों घबराया है,
आया है तूफान, तरंगों ने उत्पात मचाया है,
बीच सरोवर नैया छोटी झोंके-झटके खाती है,
बच जाये तो तट की थाती, वर्ना तल की थाती है,
बूढ़ा माँझी डोंगा लेकर तीर सरीखा जाता है,
खुद खतरे में पड़कर औरों की वह जान बचाता है,
राजा शिवि ने अपने तन का माँस कबूतर पर था वारा;
देखो, ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा।

नन्हे-नन्हे बालक, देखो, दौड़े-दौड़े आते हैं,
बादामों की शाखों पर ज्यों फूल खिले मुस्काते हैं,
औ' गुलाब की पंखुरियों की आने वाली बारी है,
उनकी डालों पर शबनम की माला कितनी प्यारी है!
इस मोती से धरती अपने तन का साज सजाती है,
इससे घायल गुलाला की ठंडी पड़ती छाती है।
अमरों में है चौदह गोली खाकर के जो स्वर्ग सिधारा।
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा।

दिखलाई देता जो ऊंचा टीला तख्ते सुलेमाँ है,
इसके ऊपर प्रात-किरन का लगता पहला खेमा है,
उधर खड़ी दरगाह, इधर को बैठा हरमुख पर्वत है,
गंगा और वितस्ता नद का पानी क्या है शर्बत है;

थका-मरा मजदूर-मुसाफिर जो इसके तट आता है
वह इनका जल पीकर फिर से नव जीवन पा जाता है;
तरु के नीचे बैठे लोमस-ऋषि ने जैसे ज्ञान पसारा;
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा ।

यह निर्धन की नंगी—निचुड़ी हुई पुरानी बस्ती है,
महंगा है आराम यहाँ पर और मुसीबत सस्ती है,
पर आशा की जोत अंधेरे की आंखों में जगती है,
सब संकट, सब संघर्षों में खड़ो गरीबी हंसती है,
इस बस्ती में ही बापू ने अपनी कुटिया छाई है,
इसका भाग बदल देने की हमने कसम उठाई है।
कोढ़ी की विगलित काया को जैसे दे उपगुप्त सहारा;
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा ।

शुद्ध बुद्ध के मन्दिर जैसी यह लद्दाखी ललना है,
आँख समुन्दर बाँधे, छाती अंगारों का पलना है,
अपना एक अकेला बेटा सीमा पर कटवाती है,
और नहीं है कटवाने को इस पर वह पछताती है;
"मेरी छाती से जो निकली दूध-अमृत की धारा है,
उसको पीने वाला सच्चा हिमगिरि का रखवाला है।"
सच्ची नारी सावित्री के तप के बल से यम था हारा;
देखो, ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा !

सरहद पर का एक सिपाही सौ से लड़ने वाला है,
घाव भरा तन लेकर भी वह दुश्मन का परकाला है,
मरते-मरते अपने संगी-साथी से कह जाता है,
देखें दुश्मन के जुल्मों का बदला कौन चुकाता है;
माँ से कहना, उसके आंसू व्यर्थ न जाने पायेंगे,
गोली में परिवर्तित कर हम दुश्मन पर बरसायेंगे।
चक्रव्यूह में पड़कर भी अभिमन्यु नहीं है अबतक हारा;
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा ।

और तुम्हारी दुनिया कैसी ? दुहरे चेहरे वाली है,
एक तरफ से उजली-उजली, एक तरफ से काली है,
दुनिया को धोखा देने की तुमने चाल निकाली है;
जीभ कहेगी मीठा-मीठा, दिल में विष की प्याली है;
छीन-झपट करते जाना, बल से हथियाते जाना,
और लुटा अपने को कहकर दुनिया भर को भरमाना।
तुम दुश्मन बन गए, लगाते हम भाई-भाई का नारा,
देखो, कैसी राह तुम्हारी,
कसा है संसार तुम्हारा !

भारत माना करता सबसे मानवता का नाता है,
भाई-चारे का रिश्ता वह सब के साथ निभाता है,
शान्ति, सिधाई, औ' सच्चाई उसको दिल से प्यारे हैं—
इसीलिए क्या खुश दिखलाई देते शत्रु हमारे हैं—
ऐसे को धोखे में रखना कोई मुश्किल बात नहीं,
किन्तु कभी सहता है भारत दुश्मन का आघात नहीं।
और न मुंह दिखलाने क़ाबिल रहता है भारत का मारा।
देखो, ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा।

□ अनु० —डॉ० हरिवंश राय बच्चन

हमारा वतन

वतन हमारा एक विहंसता फूल है,
वह बहार है जिसपर जोबन आ गया,
शालिमार है जो फूलों से छा गया,
खुशी, कि जो देती तन को जामा नया,
वह कमलों से निकलती हुई सुगन्ध है,
उसके दिल में प्रेम कहानी बन्द है,
यौवन की वह पहली प्यारी भूल है;
वतन हमारा एक विहंसता फूल है।

वतन हमारा महकदार गुलजार है,
खिलते फूलों के गालों सा लाल है,
बचपन की मुस्कानों सा खुशहाल है,
अभी-अभी जो फूट पड़ा वह गीत है,
नौजवान के पागल मन की प्रीत है,
वतन हमारा बालपने का यार है;
वतन हमारा महकदार गुलजार है।

वतन हमारा है आंखों की रोशनी,
वर-खोजी बाबुल का सोने का डला,
ऊषा की नवज्योति की यौवन की कला,
गोद लिया बन्ध्या का बेटा लाड़ला,
वह आशा जो पूरी होने को बनी;
वतन हमारा है आंखों की रोशनी।

वतन हमारा एक सुनहरा गांव है,
थके मुसाफिर को चिनार की छांव है,
डलके तट पर उतरी सुन्दर शाम है,
फला पेड़ पर वह पहला बादाम है,
फल मेवों की टोकरियां लाने वाले
मामा जी के आने का पैग़ाम है,
मां के आँचल में ममता का भाव है;
वतन हमारा एक सुनहरा गाँव है।

वतन हमारा जैसे जामावार है,
चतुर सुई से कढ़ी केसरी क्यारियाँ
कोमल जैसे हों रेशम की सारियाँ,
तूश कि जिसपर लगी रूपहली धारियाँ,
खुदी लकड़ियों पर बचपन की मूरतें,
हुई न जिनके मन की, ऐसी सूरतें;
वतन हमारा इन सबका आकार है;
वतन हमारा जैसे जामावार है।

हम अपनी धरती के पहरेदार हैं,
जम्मू, पुंछ, लद्दाख और कश्मीर के,
हम जो कहलाते हैं बेटे वीर के,
डाल हमारीं हिम्मत, बल तलवार हैं,
कुन्द न होती जिसकी पैनी धार है,
कहीं ज़िंदगी ने भी मानी हार है,
इसके मुंह लगना बिल्कुल बेकार है,
हम सब लड़ने मरने को तैयार हैं;
हम अपनी धरती के पहरेदार हैं।

शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं,
हब्बा-खातू की छाती की तान भी,
जीवन का जो भेद बताये, ज्ञान भी,
नए हमारे कंठस्थल में राग हैं,
नयी बहारों से लहराते बाग हैं,
हाथ हमारे आज नये ही साज हैं;
शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं।

एक नया आदर्श हमारे पास है,
हमने भारत भर का पाया प्यार है,
मिली वितस्ता से गंगा की धार है,
सत्य और संकल्प हमारा एक है,
हिमगिरि के घन तुहिन कणों की छाँव में,
आज हमारी मिट्टी का अभिषेक है,
आज प्रेम के सागर में उल्लास है ;
एक नया आदर्श हमारे पास है।

□ अनुवाद : डा० हरिवंश राय बच्चन

पेड़ छायादार

पेड़ छायादार
काया भव्य इसकी
आयु को आया हुआ,
ऊपर उठा,
तन कर खड़ा है,
पूत पावन है स्वजन पुरखा हमारा।
पल्लवित हर डाल, शाखा;
है शिखा से मूल तक यह पल्लवित
रस से भरा है;
भाल इसका है उठा आकाश तक,
गौरव भरा है—
देह पौरुष से भरी;
जीवन समाया है
हिलोरें ले रहा रग-रोम में;
है आयु इसकी आदि-युग से चली आई,
अन्त इसका ही नहीं होगा कभी भी;
देह का विस्तार, यह आकार;
जोड़ा है न इसका;
मूल इसके हैं धरा के गर्भ में,
है अन्त इसका व्योम की निःसीमता में।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा॥

पेड़ छायादार :
यह विस्तार ! संख्यातीत शाखें;
डालियां ये टहनियां अगणित;
अलौकिक रूप;
रस की अमर गंगा बह रही
इसकी गठीली देह में;
है स्नेह का यह पुंज;
इसकी पत्तियां हैं
पातियां मनहर बहारों की पठाईं;
है नशा यह मदिर माधव का;
रसीला राग जीवन का;
इसे रोपा धरा में देवताओं ने;
अमिट वरदान इसको दे दिया—
"तुम स्वर्ग हो जाओ !"
यही वह पेड़ छायादार,
माधव नाम जिसका;
पेड़ छायादार, जोड़ा है न इसका ।।

पेड़ छायादार;
ऐसा है न दूजा विश्व में;
कहते—इसे पिछले जनम में
अमरता ने था नहाया;
मूल इसका सींच डाला था सुधा ने;
ईश ने इसको परस पावन दिया था;
अंग इसके रंग से भरपूर,
अब तक
जन्म-जन्मों बाद भी जो उड़ न पाये;
एक भी फुनगी न इसकी
ताप से मुरझा गई;
स्वर्ग-गंगा ने इसे है सींच डाला;
अमृत की मधु-धार इसको है पिलाई;
औ' इसे पाला;
अमर आशीष पाकर
यह बड़ा होता गया;

है आंख का तारा, हृदय का चाँद उसका;
ईश ने इसको रचा,
पोषण किया है।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा ।।

पेड़ छायादार :
यह विस्तार;
काया दिव्य इसकी;
है शिखा से मूल तक सर-सब्ज;
पत्तों से भरा;
कादम्बिनी ज्यों बाँटती हो छांह मीठी;
है घना; शीतल
सजल शबनम बिखेरे जा रही हो वायु,
चन्दन लेप से सिंगार जिसने कर लिया हो;
नेह का यह रूप;
बहना का गले लगना,
कि पड़ना बांह का घेरा
समय के बाद
भाई के गले में;
शब्द है "रस" का,
कि जिसका अर्थ :
देता प्यार से आवाज
रसिया 'पोशनूल'
सजिनि को कहीं से,
सघन कुंजों से घिरी वन वीथिका से;
है सरस, शीतल,
पवन छन आ रहा हो
सघन चन्दन की वनाली से मचलकर;

पेड़ छायादार :
है अस्तित्व इसका दिव्य पावन ।।
पेड़ छायादार :
यह खोजा गगन के पंछियों ने
विश्व के इस खण्ड ने, उस भाग ने

ले राग अन्तर में—
प्रबल, निर्बाध इच्छा से इसे चाहा,
कहा —
"हम नीड इसको ही बनायेंगे,
यही इहलोक औ' परलोक अपना,
है यही आवास, हम उल्लास लेकर
गीत गायेंगे, हंसेंगे प्यार बाँटेंगे;
हम यहीं जन्में, बड़े हों,
हो यही साकार अपने स्वप्न सारे;
ले प्रबल निर्बाध हिम्मत
हम सभी शुभ काज पूरा कर दिखायेंगे।"
कहा सुन्दर मनोहर पंछियों ने,
"पेड़ छायादार यह संसार अपना।"

पेड़ छायादार :
यह संसार अनगिन प्राणियों का,
रंग-बिरंगे रूप !
कोई श्वेत,
काले हैं कई,
गोरे,
कई हैं गेहुंए,
है श्याम कोई,
हैं कई तुर्की
अजम के हैं कई,
इस देश का कोई,
कई हैं पार पच्छम के,
मगर सबका यही आवास,
सब की माँ यही, बाबा यहीं हैं;
तीज और त्यौहार—
हैं यहीं लगते,
यहीं पर ईद होती,
है यहीं पर
होलियां पिचकारियां ले रंग बिखराती चली जातीं;
खिलाती फूल बैसाखी धरा के हर कदम पर;

हैं कई काले, कई हैं श्वेत;
पर हैं एक सारे;

पेड़ छायादार :
यह संसार इन सब प्राणियों का ।।
पेड़ छायादार :
है आगार अनगिन बोलियों का;
टेरती वंशी,
मधुर संतूर की झंकार आती
हैं घड़े की गूंज,
तबला थाप देता,
और यह वीणा हुई है बावली :
यह राग है आसावरी का ।
पंछियों की बोलियां :
टी वी टि टू कू
टेरता है दूर से कोई स्वजन को,
संगिनी को,
है बुलावा : "आ प्रिया !"
"आ जा पिया !"
ये गीत मन को जीत लेते,
बोलियाँ ये भिन्न
पर आवाज़ इनकी एक ही है;
सप्त स्वर का है मधुर सरगम
सभी समवेत गाते :
राग है आसावरी का ।

पेड़ छायादार :
है आगार अनगिन बोलियों का ।।
पेड़ छायादार :
यह है बांटता मधु छांह शीतल
पंछियों में;
जन्म-जन्मों तक मधुर रसधार
पाते ही रहेंगे;
है यही आवास,

इनकी माँ यहीं, बाबा यहीं है;
शाप कोई दे,
निरखता जाय शनी की दीठ से कोई इसे,
पर कुछ नहीं होगा;
न इसका एक भी पड़ेगा जर्द;
टहनी में पड़ेगा बल नहीं,
मनहूस साया छू नहीं सकता इसे;
ओ' मौत की स्याही
नहीं कर पाएगी, धुंधला इसे;
है भूमि ने इसको दिया मधु स्नेह;
अम्बर ने दिया आशीष इसको;
पेड़ छायादार :
यह कल्पांत तक जीवित रहेगा ।।

पेड़ छायादार :
ऐसे हों धरा की हर दिशा में,
है यही इच्छा,
यही है चाह अपनी;
विश्व की यह वाटिका
सर-सब्ज, हरियाली भरी हो;
रेत का हर कण कली बन जाए;
पत्थर से बहे रसधार,
जीवन;
औ' हवा जो बहे
हो जाय वंशी का मधुर आह्वान;
है अरमान इतना;
इस विहग को उस विहंग का प्यार मिल जाए;
यहां पर
हर कदम जो भी पड़े
मधु लास बन जाये यहाँ;
मधु केलि कौतुक से जगत की वाटिका—
यह एक मेला हो;
बने त्यौहार भू का हर दिवस;

यह बांटना स-स्नेह छाया
है यही उद्देश्य इस मधु कल्पद्रुम का;
पेड़ छायादार ऐसे हों धरा की हर दिशा में।
पेड़ छायादार यह पुरखा हमारा ॥

☐ अनु० : श्री मोहन निराश

हम प्रहरी हैं जन्म-धरा के

[श्री दीनानाथ नादिम की कश्मीरी संगीतिका
'बुम्बुर—यम्बरजल' का अन्तिम गीत]

हम प्रहरी हैं अपने प्राणों के, अपने जीवन के।
हम प्रहरी हैं जन्म-धरा के, फूलों के उपवन के।।
सदियों का है गेह हमारा यहाँ, यहीं हम जनमें।
इसने हमको अंक लिया है, हमने इसे स्वमन में।।
हमने इस कलि की रखवाली की है, कांटा बन के।
हम प्रहरी हैं जन्म-धरा के, फूलों के उपवन के।।
जो हथियाने की कोशिश कर लेगा इस मधु भू को।
जो आगे आएगा, छेड़ेगा इस वीर प्रसू को।
समझो दिन उलटे आये हैं उस पापी दुश्मन के।
हम प्रहरी हैं जन्म-धरा के, फूलों के उपवन के।।
कुटिल शरद् को, तूफां को हम पाशों में कस लेंगे।
अभिमानी तड़िता का शिर हम भू-लुण्ठित कर देंगे।।
रंग तभी तो नहीं ढलेंगे इस भू के नन्दन के।
हम प्रहरी हैं जन्म-धरा के, फूलों के उपवन के।।

☐ अनु० : श्री मोहन निराश

फूले फुलके सा चढ़ा चाँद

दिवस एक, पर्वत के पीछे
फूले फुलके सा चढ़ा चाँद !
जीर्ण आँचल को खुला छोड़कर,
चांदी से तन के दाग़ दिखाता,
तार-तार हुआ लोम-पट सा।
चढ़ा चांद ! श्रम-क्लांत मजूरिन को,
मानो ठगकर ठेकेदार ने,
अन्य सिक्कों के साथ दिया,
एक रुपया—किन्तु खोटा !
फूले फुलके सा चढ़ा चांद !
क्षुधा-पीड़ित हुए पहाड़ !
चूल्हा बुझने लगा घनों का,
वन-वनिता का चौका चमका।
अन्न-ढेरी से धवल हुए शृंग।
सुना यही भूखे अन्तर ने,
मैं आकाश को लगा ताकने !

☐ अनु०—प्रो० हरिकृष्ण कौल

चोर

मेरे घर की चोरी कर कोई है भागा
रंगीन तितलियों के कारण
इन बगियों में मैं व्यर्थ गया
रंगों की छाया-छवियों ने
मुझको बस अब तक भरमाया
दिन-रात गंवा जाना पाया
हां, केवल मैंने ही पाया
पर जो कुछ था। सब चला गया :
कोई मुझको है लूट गया
आतप टुकड़ों के, शरद्काल के
औ' बहार के वर्ण सभी
जाड़ों की वे हिम-शर्तें सब
ग्रीष्म की वह तैराकी
हंसते-हंसते से शौक़ प्यार की मुस्कानें
······सब कुछ ले भागा चोर
रहा अब बाक़ी क्या
कांगुर इक टूटी-फूटी-सी
जिसमें है बर्फ का एक डला।

☐ अनु० : श्री पृथ्वीनाथ मधुप

तिनका

मेरी जैसी ही दशा हो गई
लो इस घास के तिनके की
जब रस था इसमें था तब यह
रेशम-सा चिकना औ कोमल
सहता था वायु थपेड़ों को
वर्षा की कमी न खलती थी
सर्दी का मौसम क्या आया
इसने सब चिकनापन खोया
कष्टों से घिरा मगर झूठी इसने है शान बहुत पाली
जिसका निजका है समय गया
उसका मोहरा कुछ नहीं रहा
उसका अपना आधार कहां
एक फूंक से टूटेगा
तनिक दाब से फूटेगा
थोड़ी-सी आग दिखाओ तो
वहीं राख हो जाएगा।

□ अनु० : श्री पृथ्वीनाथ मधुप

सिन्धु-नद-जल !

बातें कर लें सिन्धु-नद-जल रे, रुक जा रुक जा
मालूम हिमानी से कर अन्त करें आ संशय का
संलाप वरें सिन्धु-नद-जल रे, टुक तो रुक जा
महाकाय भूधर यह खड़ा कि वनमानुष
उचक चढ़ा ऊंचे ऊंचे से भी ऊंचा
ऊपर इक बादल का टुकड़ा रीता-रीता
ज्यों गुच्छी-दल ओट-ओट से कहीं चला
नभमण्डल संवलाया सूर्यास्त बाद कब का
स्खलन का हो गया शिकार वहां
चीड़ों का एक बड़ा टीला
निकला है बाजार अभी/चाँद दूज का—
लेकर कर में निज एक वलय आधा-आधा
लगता जैसे श्वेतबिलाव सघन झुरमुट में चीख रहा
धूसर पगडंडी चलती है टेढ़-टेढ़ी
झर-झर पानी का जैसे सन्नाटा
पादबंध युत लावारिस हय
पथ भूला
ठिक···ठिप ठिक···ठिप
चाँद देखता पहले
फिर निज गति खोता
अभी-अभी तो गोचर था
अब कहां गया

-सुगति मनोहर रूठ गई उसकी
तुझसे भी तेरा खुदा कि है रूठा
मुझसे भी मेरी रूठी आज सदा
मालूम हिमानी से कर अन्त करें आ संशय का
-संलाप वरें सिन्धु-नद-जल रे, टुक तो रुक जा।

□ अनु० : श्री पृथ्वीनाथ मधुप

तिल

छबीली के तिल है
भौंह के नीचे
तले देवदार के
रह गया भूल से
ज्यों मन का नागराज[1] का
खोज रही जिसे विकल हीमाल[2] है,
या अंबर के नूपुरी दामन में
वा बादलों की गोद में
विराज रहा भिनसार हो।

छबीली के तिल है
गाल रूपी डाल पर
आलोकित मोती-सा,
मजनूं निरख रहा हो
सपना ज्यों लैला का
नज़्द के वन में—
विरह-व्यथित प्रिया पल-पल काटती
अनभनी बैठकर पीछे नगराज के
या निशा ने बिखेर दिए जो अश्रुकण
भोर ने बटोर उन्हें गट्ठर-सा बनाया हो।

---

1. 'नागराय' और 2. 'हीमाल' एक कश्मीरी लोककथा के नायक-नायिका —सं०

छबीली के तिल है
मस्तक के ऊपर,
सूर्य-प्रभा से घिरा प्रकाश-वीर
ले रहा हो चुंबन ज्यों पद्मिनी के भाल का,
रूप फ़बीला
जैसे नूरजहां हूर-सी
या केशरूपी वन से
लपक चला एक मृग
नयन स्रोतों की छाया में
आराम से बैठ गया हो.

छबीली के तिल है
कनपटी के नीचे,
चमकता इक झुमका—
बिखरी-मेघ-मालाओं को
चूम लिया हो ज्यों तडित ने
भौंरा एक दीवाना
देखने को ललचाती जिसे
वह अनूढ़ा छबीली
या सरवर निर्जन प्रदेश का
विरहणी के आंसुओं से जो लबालब भरा हो।

छबीली के तिल है
श्वास की नली पर,
स्नेह मातृ उर का
ज्यों वृक्ष की छाया में पला हो,
तारा इक मां की आंखों का
जैसे रूठकर मचल गया हो
या इक निर्धन दीना की
बिखरे तुष कणों में से
बीने चावलों की
छोटी-सी इक बन्द मुठ्ठी हो।

☐ अनु० : डा० शिवन कृष्ण रैणा

रात के तीन पहर

रात	निःश्वास काला
चांद	ठण्डा चूल्हा
छाया	धुंधला विष
बग़ीचा	नंगी मूंड
खेत	खुरदरी खाल
चिनार	विशालकाय ढांचा
घोंसले	सिकुड़ते छेद
कौवा	कौवा काला तिलक
रात	गर्भित रहस्य
चाँद	जमा रक्त
आशा	सुसुप्त धुंआ
पर्वत	उभरी आर्द्रता
पता	अथाह सागर
शौक	टेढ़ी पहेली
चीख	कण्ठ का बन्धन
तन्द्रा	सांप का डसना
रात	परियों की कहानी
चाँद	लुभावना प्रकाश
अंधकार	कजरारे नयन

आयु	उधार की साँसें
वक्त	न रुकती उड़ान
आशा	बहती नदिया
वसंत	मीठा विश्वास
बाग़	उसका सन्देश

□अनुवाद : डा० शिबन कृष्ण रैणा

नया सोच : नया मोड़

सुबह की बयार मेरे दरीचे को
हौले-हौले खड़का गई, और
मैंने नज़र उठाकर देखा—
प्रकाश छितराता दिन घुस आया था
ठेठ भीतर तक,
पेड़ों की फुनगियों पर
धूप मल रही थी सोना
शबनमी मोतियों से भरी थी
पत्तों की झोलियां,
कहीं-कहीं कुहासे के घेरे में
आखिरी साँसे ले रही थी
मतवल्ली रैना अब भी ।
यह है मेरा बाग,
सब कुछ है इसमें
फिर भी है कुछ कम ।
बाग़ का मतलब नहीं केवल गुंचे और फूल
बाग़ नहीं केवल बासंती समीर
बाग़ आबशारों का संगीत भी नहीं,
बाग़···
पेड़ों की शीतल छाया का विश्वास है बाग़
पक्षियों की चहक का एतबार है बाग
मेलजोल, भाईचारे पर यकीं का
नाम है बाग़ !

□ अनु० : डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

हुण्डी

रस्ते चलते पागल ने काग़ज का इक पुर्ज़ा पाया
स्वस्थ मनुष्य चौंका, वह समझा ना जाने क्या कुछ पाया
उसने सिर हिला पगलों की हंसी हंसी और नारा मारा
इसने काटे होंठ और सोचा जाने क्या कुछ सोचा
दोनों इक दूजे के पीछे हाट में आए
पागल ने इर्द गिर्द देख पुर्ज़ा पकड़ाया बनिए को
दो हाथों से भर शीरीनी बनिए ने पागल को सौंपी
स्वस्थ बोला गिरा यह पुर्ज़ा जेब से मेरी
जेब से क्या गिर पड़ा है भाई बोलो ?
दस का या सौ का नोट हजूर
बनिया बोला खाली पुर्ज़ा नहीं है दस या सौ का
पागल ने मस्ती में दी है ताज़ा हुण्डी
फल तो नहीं गिरा करते हैं नभ से अब

☐ अनु० : श्री अर्जुन देव "मजबूर"

गज़ल

चढ़ता सूर्य राज्य राम का
भानु डूबता नाश रावण का
हुई जलप्रपात हंस हंस दोहरी
वह क्या जाने रोया कौन
नीचे आँखों तले याद है
तेरी राह हिमधवल नगों पर
यौवन ने उसे छला, न समझी
मेरा अन्तिम कौर, बुढ़ापे में खाली
नज़रों का मिलन, चपला से, जाने कौन ?
मारा किसने बाण और हुआ घायल कौन
छूटे पसीने नंगे अंधियारे के
निकट था सूराख प्रातः के जंगले के
अपने ही हैं कोई नादिम जी
मैं ना जानूं पर तुम तो पहचाने हो

☐ अनु० : श्री अर्जुन देव "मजबूर"

शब्दों को दें हम क्या क्या अर्थ ?

शब्दों को दें हम कौन से अर्थ
नग्न मासूम सादा मानव
बाँधे पंक्ति खिलते नीलाभ
नाचे ज्यों गरिमा यौवन की
पददलित हुए सड़क पर पुष्प
सुष्मा के स्रोत मस्त अलस्त
हम से अलग हमारे संग
शब्दों को दें हम क्या क्या अर्थ

कामदेव, बंगाली जादूगर प्रेमी को बचपन से नाता
चन्द्र कार्तिक का, सखिया मेरी तोड़े फूल वसन्त के साथ
जैसे मिलता अंगनाओं को मन भाता प्रेमी अपना
ग्राम सुन्दरी वृक्षों की छाया से खुश करती हो कामदेव को
पीछे बन में डोके पर बिजली खेले है अग्नि से—
नरगिस कोई भौंरा ढूंडे काम काज व्यवहार के साथ
रो पड़ती कोई अप्सरा है लड़ती इकरारो इनकार के साथ
बागे निशात का फूल लहकता बैठा दूर है यार के पास
क्या क्या अर्थ करें
कहो शब्दों के क्या अर्थ करें

नंगे मासूम सादा मानव
बांधे पंक्ति खिलते नीलाभ
नीचे ज्यो गरिमा यौवन की
पददलित हुए सड़क पर पुष्प
सुष्मा के स्रोत मस्त अलस्त
हम से अलग हमारे साथ

□ अनु० श्री अर्जुन देव "मजबूर"

थीं हम सात बहनें

एकदम निकली आहें
पीछे खींचीं, सांस रोकी
फिर भी लगीं हिचकियां
कहो रे बहना बुध बहना
क्या हुआ ? अरी क्या हुआ तुम्हें
परिवर्तन हुआ नाम में मेरे
किस नाम में ?
मंगल के नाम में।
आंसू पी लें, श्वास बदल
आज ले चलूं तुम्हें अपने संग
"चरार" बृहस्पतिवार
अलबीले "नुन्दराज" के पास
तू चिन्ता मत कर
आगे शुक्र देखता है प्रेम से
लेगा अपने संग दर्गाह
उपजे प्रकाश, मन शीतल होय
पथ-प्रदर्शिका है बहना प्यारी—
शनि अपनी।
हारी पर्वत पहुंच प्रातर्वेला में
ले थाल पीले चावल का
कंकर राहों के अशीशेंगे
शुभ पूछेगी रविवार स्वयं

और देगी डल-भ्रमण का न्योता
तब कमल खिलें
दुख: दर्द मिटे
मन शुद्ध बने
अभिशाप हरे
हो चन्द्रोदय बायें से तब
सब कष्ट मिटें जब चन्द्र मिले
तब मूल नाम की होगी प्राप्ति
तब मंगल सम पाओगे मूल
बन मंगलमय मंगल पाओगे
सातों बहनों से होगा प्राप्त मंगल तब

□ अनु० : श्री अर्जुनदेव "मजबूर"

मिश्री और माहुर

बत्ती के इर्द गिर्द दो मच्छर
दूल्हा दुल्हन रंगोली पर
इस वृक्ष की छाया में "टेकबटन्य"[1]
चौके का लीपन कर निकली
झांके है खिड़की छोटी से
साढ़ी के नीचे छूटे—
पसीने किसी अंगना के
पुष्प-सुगन्ध ने खिड़की खोली
खिल उठा मंज़गाम[2] में चन्दन वृक्ष
कुछ कम्पन नीले पर्दे में
'किलपत्रा'[3] मत चली नहाने
फूलदान में दो कलियों पर
दो सर्पों की आकृति सी
'शेषनाग'[4] के गिर्द समुद्र
जन्मा कमल फूल से ब्रह्मा
शीशे के पीछे खनकीं चूड़ियां

---

1. एक विशेष कश्मीरी वसन्त-पुष्प।
2. कश्मीर का एक तीर्थ।
3. एक यूनानी सुन्दरी।
4. अमरनाथ की यात्रा में आने वाली एक झील।

लगता है रात के बारह हैं।
उस पर्दे की ओट में बातें
दो खिड़कियों से दो आंखें
कितनी विशाल कितनी प्यार भरी
दृष्टिपात, मुस्कान और उठना झूम
रेशम रेशम कोमल कोमल
फिसल चला है हिम का खण्ड
वृहद् चिनार और छाया छाया
सीधा सर्व और उन्मुक्ता
स्वर्ण हंस उड़ा चढ़ा आकास
सम्भवतः हिरनी आग में कूदी
कुन्ती ने दी आवाज़ करण को ?
कथरे में शायद जन्मा बालक
आँखें दीवाल के चित्र पर क्रोधित
बोली पति से मजदूरन दस दिन बाद
घने अंधेरे में चन्द्रमा ग़ाइब
श्वेत वस्त्र धार "मारयम"[5] धीरे धीरे
उस पर्वत दामन से छुपी कहां ?
मुंह पर ऊषा के लाली सी
नीरद की कनपटियां हैं लाल
ज़ुलफें बिखर गईं पवन की
उपवन के सबज़े के पसीने छूटे
ऊपर से नीचे तक पतला कोमल "ही"[6] का पौधा
ऊंचाई और उभार बीच में
मीठी कड़वा, कड़वा मीठा
चली शकुन्तला फिर मैके को

☐ अनु० : श्री अर्जुनदेव 'मजबूर'

5. ईसाइयों की पूज्य देवी।
6. सुफ़ेद पुष्पों का एक सुन्दर पौधा।

जीवन

जितना विस्तृत है उतना ही अल्प, अढ़ाई पग जीवन
विस्तृत इतना माप चले ज्यों धरा शून्य का ही विस्तार।
मस्जिद तक मुल्ला की दौड़ सरीखा इसका लघु आकार ।।
केवल कभी मिलन का एक क्षण,
कभी विरह का शोक गहन ।।
जनता की अनथक सी आशा जितना है जीवन लम्बा।
किसी मार्ग-दर्शक की स्मृति सा लघु यही अचंभा।
कोमल जैसे शपथ तुम्हारी,
पर कठोर जो मेरा प्रण ।।
एक प्लव ही मधुऋतु से पहले जैसा अधखिला कुसम
एक चरण तेरा यौवन, मेरा मति-भ्रम फिसला पग मम ।।
आधे पग में सौभ घिरी कर—
बैठी पड़ती ओस रुदन ।।
पौष शीत में पायेगा आश-युत छाया वासन्ती।
अंगड़ाई लेगा समीर, जर्जर होंगे तरू हेमन्ती ।।
रुष्ट रहे तो कन्नी काटे,
तुष्ट रहे ले आलिंगन।
मीत रहे तो बनकर धा करेगा तृण-तृण तक स्वर्णिम।
जो खोजे कर्कश तुषार तो कर दे चीड़ों को रक्तिम ।।
विस्तृत तेरी मुद्रावलि है।
छोटा मेरा सधुक्कड़ी-अजिन।

☐ अनु० : श्री सुभाष प्रेमी

एक शाम : 15 अगस्त 1967

सारा आस पास है बच्चों की चहकार भरा
यहां वहां 'किलकारियाँ' भागम-भाग दौड़-धूप
हर लगह कोलाहल हर ओर चहल-पहल
एक पवन झकोरे ने बच्चों की हँसी उड़ाकर उन्हें पागल बना दिया।
सफेदे हँस-हँस कर दोहरे हुए जा रहे हैं
वेदज़ार कानाफूसियों में व्यस्त हैं
वे धीरे-धीरे ठिठेली कर रहे हैं
पेड़-पोदे जमीन पर पाँव भी नहीं धर पाते
पगला सर्वेरवाँ उचक-उचक कर आकाश की चोटी छू रहा है
चमेली मुग्ध हो-हो कर ताना बाना बुन रही है
ठहाका मार-मार के चिनार के पत्ते खूब हँस रहे हैं
अंगूर की बेल थर-थर काँप कर भी उछल कूद कर रही है
टेढ़ा मेढ़ा शहतूत का पेड़ उन्मुक्त हुआ जा रहा है
'ब्रिमिज' का पेड़ खिलखिला कर हँस पड़ा
अनार के पेड़ का यौवन फूट पड़ा है
हर जगह कोलाहल और हर ओर हलचल
एक पवन झकोरे ने
बच्चों की हँसी उड़ाकर उन्हें विक्षिप्त कर दिया है।
आह मैंने भी बच्चों की इच्छा की थी और पाकर उनको
पाला पोसा था
गले लगा-लगा कर लोरियाँ गा-गा कर
अपने पसीनों से सींचा था उनको;

जन्मोपरान्त उनको ममता दी थी
शिशिर में उनको वक्षस्थल की गर्मी दी थी
ग्रीष्म में उनको शबनमी सांसें प्रदान की थीं।
खुले दिल से उनको प्यार और स्नेह से सींचा था
चुन चुन के उनको सुंदर नाम दिये थे,
वह नीली आंखों वाला, उसके 'समानता' नाम दिया
यह जो भूरे बालों वाला था, इसका नाम रखा 'सत्य'
सांवले रंग वाले को 'शुद्धता' कह कर पुकारा
गोरे रंग वाले का 'सादगी' नामकरण किया
जो पुत्री गुड़िया समान थी ससको 'देशधन' कहा।
सुनहली पुत्री को 'भरपूर परिश्रम' कह कर पुकारा।
और 'वनमैना' को 'सभ्यता' का नाम दिया
मेरे मानस के ये अधखिले अरमान
न कभी पनप सके न कभी ताज़े हो सके।
ये खेलते क्यों नहीं, ये हँसते क्यों नहीं
ये दौड़ धूप 'भागम भाग' और खेल कूद क्यों नहीं करते ?
ईश्वर जाने इनको किसकी नज़र लग गई है,
बीस वर्ष के बाद भी आज ज्यों के त्यों गुमसुम-गुमसुम हैं
न इनकी सांस चलती है
और न कोई कोलाहल है
परन्तु आस पास अब भी बच्चों की-सी चहकार भरा है

— 'वितस्ता'' से साभार

हिन्दी कवि नादिम

इस खण्ड में हम युगकवि नादिम महोदय की तीन प्रतिनिधि हिन्दी कविताएं प्रस्तुत कर रहे हैं।

—सम्पादक

1

कलिंग से राजघाट तक

वह देखो रात हो गई,
प्रकृति लाल रक्त पात की रुमाल मुख पै डाल के निढ़ाल सो गई,
थिरक थिरक के बिजलियों ने, आँधियों ने,
भूमिकंप ने कलिंग के विवश ललाट पर,
कथा लिखी—
विजय की हार की कथा,
स्वदेश प्यार की कथा,
मनुष्य के रुधिर से नहा
नहा के लाल रंग से
कलिंग के अबोध देश प्रेम को मरोड़कर
कलिंग की कुमारी भावनाओं को भी तोड़कर, अशोक ने।

कथा लिखी—
मनुष्य के रुधिर से नहा
नहा के लाल रंग से
अधीर माताओं को निराश कर लिया—
सुहागिनों को पाश-पाश कर लिया
यह कर लिया, वह कर लिया,
यह किस लिए?
मिटा ली उन अबोध देश भक्तिनों की माँग से सुहाग की निशानियाँ
यह किस लिए ?
चुरा लिया उस अनूप देश के मुखारबिन्द से वह माधुर्य
यह किस लिए—वह किस लिए,
विजय के लोभ के लिए अशोक ने
कलिंग वासियों को शोक के समुद्र में डुबो के रख दिया।
नहीं नहीं—अभी नहीं,
अभी तो भारतीय संस्कृति के दीप की शिखा,
प्रताप से, प्रचंड से
विशाल धर्म के असीम तेज से भड़क रही थी हर तरफ,
इसी शिखा से एक शान्त लौ उठी
और उठ के छा गई
वह क्षण में छा गई
हर एक घर में, हर भवन में छा गई
शहर में छा गई,
जगत में, भूमि कण-कण में छा गई,
अशोक के अशान्त मन में छा गई,
पताका एकता की शान्ति जीत की,
अभय, अटल अमर संस्कृति
मनुष्य उच्चता की सर्व श्रेष्ठता,
पताका बन के नभ में नाचने लगी
असीम भारतीय संस्कृति के दीप की छटा
जगत के कण-कण में छलक पड़ी,
अशोक के भी पाप आप धुल गए
जगत के क्रूर घाव आप धुल गए
अशान्त द्वेष भाव आप धुल गए

परन्तु आज अन्धकार बढ़ रहा है हर तरफ़
घटाएं घूमती हैं दामनों में बिजलियां लिए
द्वेष, वैर, क्रोध, और घृणा लिए,
विषम उद्देश्य क्रूर भावना लिए,
जगत का सर्वनाश फिर समीप है,
कहां है आज सभ्यता ?
कहाँ गई संस्कृति ?
वह मर गई,
वह व्यभिचार की वबा में मर गये
कहां है धर्म और दया ?
कहाँ हैं तेरे देवता
मनुष्य के नीच हाथ से वह परलोक सिधर गए
नहीं, नहीं—अभी नहीं
अभी भी भारतीय संस्कृति के दीप की शिखा बुझी नहीं,
सुषुप्त है बुझी नहीं ।
वह देखो राजघाट पर चमकती दीप की शिखा
वह देखो अपने रक्त से किसी महान व्यक्ति ने
पताका के जड़ों को सींच कर रखा
वह देखो 'राम धुन' के मर्म स्वर हिल्लोरें खा रहे
इतस्ततः विचलित पताका के पवन मन्द गति से आ रहे
विश्व के प्रभाव में—
वह आगे बढ़ रहे हैं, शान्ति का उद्देश्य लेके बढ़ रहे हैं
प्रेम का सन्देश लेके आगे बढ़ रहे हैं
अहिंसात्मक वृत्ति का झंडा लिए हुए आगे बढ़ रहे हैं
आगे बढ़ रहे हैं
'राम धुन' के मर्म-स्वर बढ़े हैं, बढ़ रहे हैं ।।

("ज्योति" श्रीनगर के अगस्त 1951 अंक से साभार)

2

हे मेरे संन्यासी

देव मेरे करुणा के सागर हैं मेरे संन्यासी,
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी।
बाहर उमड़ी उमड़ी आँधी भीतर दहके ज्वाला
धरती पर आकाश से उतरी आती है मधुशाला
छलक रही है नीरस जीवन में भक्ति की हाला
तड़प तड़प कर तुझको ढूंढें अखियाँ प्यासी प्यासी
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी
वह देखो चपला ने हँस कर अपने दांत दिखाए
कलियां मुख अब कैसे खोलें कमल किधर मुस्काये
मतवाली कोकिल क्या चहके कहाँ पपीहा गाए
हाय यह मंत्र किसने फूंका "सुख के संग उदासी"
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी
आई है तेरी करुणा की ओर लिए अभिलाषा
थकी थकी पग पग पर ठोकर खाये मेरी आशा
होठों पर है चुप्पी प्रेम की नज़रे भाषा भाषा
मुख पर महकी महकी आभा शर्मीली संध्या सी।
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी
तेरे मन्दिर के प्रांगन में मेरे असुवन मोती
और वेदना अपनी बैठी माला जाय पिरोती
काँप रही है दीप शिखा में मेरी प्रात की ज्योति
आशा बाहें फहलाये है व्याकुल पुष्प-लता सी
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी ॥

[रचनाकाल—1942]

उड़ान

संभव है सूर्योदय होगा।
काली उन चट्टानों के बीचोंबीच
निशा सोई है।
और उसके छितराये बालों पर टपकी है उज्जवल ओस
और ऊपर से अलसाई इक पगडंडी
कंपित कंपित,
चली आ रही है धीरे से—
संभव है सूर्योदय होगा !
एक सेना सौ गीली गीली
किरणों की उमड़ घुमड़ आती है
जैसे छुट्टी होने पर
विद्यालय उगल रहा हो बच्चे
या कान्ह हो अघासुर का पेट फाड़कर
बाहिर आया।
हर एक खिड़की पर थपकी दे
हर द्वार की सांकल बाजे—
सब सोये हैं—
जन्म जन्म से सब सोये हैं।
किस को याद रही वे बातें—
कौन अतीत की गाथा सुन ले ?
होगा सूर्योदय होने दो—
संभव है सूर्योदय होगा

[रचनाकाल—1967]

कवि के जीवन की मुख्य घटनाएं एक नजर में

संकलन
□ रेणुका सप्रू

1916 : जन्म (फाल्गुन शुक्ल पक्ष दशमी)
1922 : पिता की मृत्यु
1936 : शहीद-ए-अज़म भगतसिंह के विचारों से प्रेरित "सोशलिस्ट क्लब" की स्थापना

1937 : ऑल जम्मू एंड कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस की सदस्यता
1938 : कारावास
1940 : अध्यापक के रूप में नियुक्ति
1941 : 'मातृ-भक्त' (हिंदी कविता) रचना
1942 : देवदास का एक दृश्य तथा संन्यासी (हिंदी) रचना
1943 : खाय विदुर का सूखा साग तथा जमुना घाट (हिंदी) रचना बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण
1943-47 : डी०ए०वी, में और दैनिक 'प्रताप', लाहौर में नौकरी।
1944 : माता का देहान्त
1947 : प्रथम संगीत रूपक 'यि ज़मीन त'म्य सं'ज़ येम्य कमाव खीत्य' की रचना
1949 : बी०टी० परीक्षा उत्तीर्ण
1951 : प्रधान सचिव, आल स्टेट कल्चरल कॉन्फ्रेंस
1952 : चीन की सद्भावना यात्रा
1952-54 : प्रधान सचिव, कश्मीर शांति परिषद
1955-56 : प्रधान, कश्मीर टीचर्स एसोसिएशन
1955-57 : सदस्य, साहित्य अकादमी, दिल्ली
1957 : जम्मू-कश्मीर विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित
1956-74 : सदस्य, परामर्शदाता मंडल, ज० क० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

1960 : सदस्य, परामर्शदाता समिति, रेडियो कश्मीर, श्रीनगर
: अध्यक्ष, कश्मीर नेशनल थियेटर, श्रीनगर
: सदस्य, जम्मू-कश्मीर एकादमी ऑफ, आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजस
1965-69 : असिस्टेंट डायरेक्टर, सोशल एजूकेशन, ज० क० राज्य
1971 : सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड प्राप्त तथा सोवियत संघ की यात्रा
1974 : ज० क० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजस द्वारा सम्मानित
1985 : राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा प्रथम कल्हण एवार्ड से सम्मानित
1986 : साहित्य-अकादमी एवार्ड

काव्यमय कश्मीर के कवि

नादिम साहिब बड़े ही प्रतिभाशाली कवि हैं। श्रीनगर में उनकी एक कविता मुझे उन्हीं के मुख से सुनने को मिली। मूल की भाषा तो मैं कुछ न समझ सका, किन्तु नादिम साहिब ने उसका जो अर्थ बताया उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। ...इसमें अभी कृत्रिमता का प्रवेश नहीं हुआ है। कश्मीरियों का जीवन भी अभी काव्यमय है। इसीलिए, कश्मीरी भाषा में आज भी हृदय हिलाने वाली कविताएं की जा सकती हैं।

स्व० रामधारी सिंह दिनकर